हमारे रसूले-पाक (सल्ल॰)

तालिब हाशिमी

अनुवाद

नुज़हत यासमीन

■ लेखक की ओर से 9

पहला इनसान—पहला मुसलमान 11

पैग़म्बरों का सिलसिला 12

हज़रत नूह (अलैहि०) 13

हज़रत हूद (अलैहि०) और हज़रत सालिह (अलैहि०) 13

हज़रत इबराहीम (अलैहि०) 15

नबियों के बाप 15

आग बाग़ बन गई 15

वतन छोड़ दिया 16

हज़रत हाजिरा (रज़ि०) से शादी 16

दुआ पूरी हुई 16

फ़ारान की वादी 16

अरब देश 17

ज़मज़म 18

मक्का शहर की बुनियाद 19

प्यारे बेटे की क़ुरबानी 19

हज़रत इसहाक़ (अलैहि०) और उनकी औलाद 20

दुनिया की पहली मस्जिद 20

बाप-बेटे की दुआ 21

हज़रत इसमाईल (अलैहि०) का घराना 22

क़ुरैश 22

क़ुसई-बिन-किलाब	22
क़ुरैश अरब का सबसे इज़्ज़तदार क़बीला	23
मक्का में रियासत का क़ियाम	23
अब्दे-मनाफ़ : मक्का का चाँद	24
हाशिम	24
अब्दुल-मुत्तलिब	25
ज़मज़म मिल गया	26
अजीब मन्नत	26
जनाब अब्दुल्लाह	27
जनाब अब्दुल्लाह की शादी	27
जनाब अब्दुल्लाह का इन्तिक़ाल	27
मक्का पर अबरहा की चढ़ाई	28
अब्दुल-मुत्तलिब की अबरहा से मुलाक़ात	28
खाया हुआ भूसा	29
बुराइयों का अन्धेरा	30
बहार आई—बहार आई	33
हर तरफ़ नूर फैल गया	33
अक़ीक़ा और नाम	34
रसूल (सल्ल॰) का बचपन	35
बीबी हलीमा (रज़ि॰) के पास	35
बरकत का ख़ज़ाना	35
बीबी आमिना का इन्तिक़ाल	36
दादा के पास	36
अबू-तालिब के पास	37
सीरिया (शाम) का पहला सफ़र	37

बुरी बातों से नफ़रत	38
कारोबार	38
रसूले-पाक (सल्ल०) की जवानी	39
दुखियारों की मदद का समझौता	39
सादिक़ और अमीन	39
हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) से शादी	40
एक बड़े विवाद का फ़ैसला	41
हर एक के साथ भलाई	42
हिरा की गुफ़ा में इबादत	42
नुबूवत (पैग़म्बरी)	43
इस्लाम की दावत	45
इस्लाम की खुली दावत	47
पहाड़ी से आवाज़ दी	47
क़ुरैश की मुख़ालफ़त	49
मुसलमानों पर ज़ुल्म व सितम	51
हबशा की हिजरत	53
हज़रत हमज़ा (रज़ि०) और हज़रत उमर (रज़ि०) इस्लाम की आग़ोश में	55
पहाड़ के दर्रे में तीन साल	58
ग़म का साल	59
इस्लाम-दुश्मनों का ज़ुल्म और बढ़ गया	59
ताइफ़ का सफ़र	59
क़बीलों से मुलाक़ात	60
मददगार मिल गए	60
मेराज का वाक़िआ	61
रसूले-पाक (सल्ल०) ने अपना देश छोड़ दिया	62

यसरिब बना नबी (सल्ल॰) का मदीना	64
मस्जिदे-नबवी की तामीर	64
भाईचारा	65
यहूदियों से समझौता	65
मदीना के मुनाफ़िक़ (कपटाचारी)	65
बद्र की लड़ाई	66
उहुद की लड़ाई	69
इस्लाम-दुश्मनों की धोखाबाज़ी	70
मुरैसीअ की लड़ाई	72
ख़न्दक़ की लड़ाई	73
हुदैबिया का समझौता	75
बादशाहों को इस्लाम की दावत	77
ख़ैबर की लड़ाई	79
उमरा	81
मुअता की लड़ाई	82
मक्का की फ़तूह	83
हुनैन की लड़ाई	86
सारा अरब मुसलमान हो गया	88
तबूक की लड़ाई	89
हज्जे-अकबर	91
आख़िरी हज	92
नबी (सल्ल॰) की वफ़ात	95
नबी (सल्ल॰) की पाक बीवियाँ	98
नबी (सल्ल॰) की औलाद	101
अल्लाह की आख़िरी किताब	102

इस्लाम के पाँच सुतून 103
दिलो-जाँ से प्यारे हमारे रसूल 104
रसूले-पाक (सल्ल॰) की प्यारी सूरत 105
रसूल (सल्ल॰) का पसीना 106
रसूल (सल्ल॰) की जिस्मानी ताक़त 106
रसूल (सल्ल॰) का हँसना 107
रसूल (सल्ल॰) की बातचीत 107
रसूल (सल्ल॰) का चलना-फिरना और बैठना 107
रसूल (सल्ल॰) का खाना, पीना, पहनना और सोना 108
रसूल (सल्ल॰) का लिबास 109
रसूल (सल्ल॰) का बिस्तर 109
रसूल (सल्ल॰) की नींद 110
रसूल (सल्ल॰) के दिन-रात 111
लोगों से मुलाक़ात 112
रसूल (सल्ल॰) के अख़लाक़ 113
रसूल (सल्ल॰) हमेशा सच बोलते थे 115
रसूल (सल्ल॰) वादे के पक्के थे 116
रसूल (सल्ल॰) बहुत ईमानदार थे 118
रसूल (सल्ल॰) लेन-देन में बहुत खरे थे 120
रसूल (सल्ल॰) बहुत रहमदिल थे 122
गुलामों और ख़ादिमों पर रहम 124
जानवरों पर रहम 125
औरतों पर रहम और मेहरबानी 126
रसूल (सल्ल॰) यतीमों के सरपरस्त थे 128
रसूल (सल्ल॰) ग़रीबों के हमदर्द थे 130

रसूल (सल्ल॰) बेसहारों का सहारा थे	131
रसूल (सल्ल॰) बीमारों का ख़याल रखते थे	133
रसूल (सल्ल॰) लोगों के दुख के साथी थे	134
रसूल (सल्ल॰) मेहमानों की बहुत इज़्ज़त करते थे	135
रसूल (सल्ल॰) लोगों की ख़िदमत करके ख़ुश होते थे	137
रसूल (सल्ल॰) बड़े सख़ी (दानशील) थे	138
ईसार (त्याग)	139
रसूल (सल्ल॰) बहुत शर्मीले थे	141
रसूल (सल्ल॰) हँसमुख थे	142
रसूल (सल्ल॰) बड़े मीठे बोल बोलते थे	144
रसूल (सल्ल॰) दूसरों पर अपनी बड़ाई नहीं जताते थे	146
रसूल (सल्ल॰) बड़े सादा मिज़ाज थे	148
रसूल (सल्ल॰) बुराई का बदला भलाई से देते थे	150
रसूल (सल्ल॰) ग़लतियों को माफ़ कर देते थे	152
रसूल (सल्ल॰) हमेशा अल्लाह पर भरोसा करते थे	154
रसूल (सल्ल॰) बड़े बहादुर और निडर थे	156
रसूल (सल्ल॰) सब्र और शुक्र करनेवाले थे	159
रसूल (सल्ल॰) हर एक से इनसाफ़ करते थे	160
रसूल (सल्ल॰) लोगों के सामने हाथ फैलाने से मना करते थे	162
रसूल (सल्ल॰) को सफ़ाई बहुत पसन्द थी	164
रसूल (सल्ल॰) बच्चों से बहुत मुहब्बत करते थे	166
रसूल (सल्ल॰) की प्यारी बातें	169

بِسْمِ اللّٰهِ الرَّحْمٰنِ الرَّحِيْمِ

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम
'अल्लाह के नाम से जो बड़ा मेहरबान, निहायत रहमवाला है।'

लेखक की ओर से

हमारे रसूले-पाक (सल्ल॰) की पाक ज़िन्दगी पर अब तक अनगिनत किताबें लिखी जा चुकी हैं और हमेशा लिखी जाती रहेंगी। मेरे दिल में भी बहुत दिनों से ख़ाहिश थी कि नबी (सल्ल॰) की एक ऐसी सीरत (जीवनी) लिखूँ–

1. जो मुख़्तसर हो लेकिन उसमें कोई ज़रूरी बात न छूटे।
2. जिसमें जंचे-तुले हालात और आख़िरी हद तक सच्चे वाक़िआत दर्ज हों।
3. जिसकी ज़बान इतनी आसान और सुलझी हुई हो कि उसको छोटी उम्र के लड़के-लड़कियाँ और कम पढ़े-लिखे लोग भी आसानी से समझ सकें।
4. जो स्कूलों और मदरसों के कोर्स में शामिल की जा सके।
5. जिसकी रौशनी में माँ-बाप और उस्ताद (शिक्षक) अपने बच्चों और शागिर्दों को नबी (सल्ल॰) की पाक ज़िन्दगी के वाक़िआत को आसानी से याद करा सकें।
6. जिसमें नबी (सल्ल॰) के बेहतरीन अख़लाक़ के अलग-अलग पहलुओं को दिल में उतर जानेवाले तरीक़े से ज़िक्र किया गया हो।
7. जो उन कमियों से पाक हो जो दूसरी किताबों में पाई जाती हैं।

अल्लाह का लाख-लाख शुक्र है कि उसने मुझे यह किताब "हमारे रसूले-पाक (सल्ल॰)" लिखने की तौफ़ीक़ अता फ़रमाई। अब यह फ़ैसला पढ़नेवाले ही कर सकते हैं कि जिन बिन्दुओं पर मैं यह किताब लिखना चाहता था यह उनके मुताबिक़ है या नहीं। पढ़नेवालों से दरख़ास्त है कि वे

मेरे लिए मग़फ़िरत की दुआ करें और अगर उन्हें इस किताब में कोई कमी या ग़लती दिखाई दे तो मेहरबानी करके उससे नाशिर (प्रकाशक) को आगाह करें ताकि अगले एडिशन में उसका सुधार किया जा सके।

–तालिब हाशिमी

पहला इनसान—पहला मुसलमान

अल्लाह ने जब यह दुनिया बनाई और इसमें इनसानों को बसाना चाहा तो उसने अपनी क़ुदरत से जिस इनसान को सबसे पहले पैदा किया, उसका नाम आदम रखा। फिर उसकी बीवी पैदा की और उसका नाम हव्वा रखा।

जिस दिन अल्लाह ने हज़रत आदम (अलैहि॰) और हज़रत हव्वा (अलैहि॰) को इस ज़मीन पर उतारा, उसी दिन उसने उनको बता दिया कि देखो, तुम मेरे बन्दे हो और मैं तुम्हारा मालिक हूँ। दुनिया में तुम्हारा काम यह है कि जिस बात का मैं हुक्म दूँ उसे मानो और जिस काम से मैं मना करूँ उससे रुक जाओ। अगर तुम ऐसा करोगे तो मैं तुमसे ख़ुश होऊँगा और तुम्हें इनाम दूँगा और अगर तुम ऐसा न करोगे तो मैं तुमसे नाख़ुश होऊँगा और तुम्हें सज़ा दूँगा।

बस, यही इस्लाम की शुरुआत थी। इस्लाम का मतलब है कि अपने आपको अल्लाह के सिपुर्द कर दें और उसके हुक्म के आगे अपना सिर झुका दें। दुनिया के पहले इनसान हज़रत आदम (अलैहि॰) ने अल्लाह के हुक्म के सामने अपना सिर झुका दिया। इस तरह वे दुनिया के पहले मुस्लिम (फ़रमाँबरदार) थे, जिसे हम अपनी बोली में मुसलमान कहते हैं। हज़रत हव्वा (अलैहि॰) ने भी अपने शौहर हज़रत आदम (अलैहि॰) की पैरवी की। इस तरह वे दुनिया की पहली मुसलमान औरत थीं।

अल्लाह ने आदम और हव्वा (अलैहि॰) को औलाद दी और उनको हुक्म दिया कि अपनी औलाद को भी इस्लाम की तालीम दें। उन्होंने ऐसा ही किया। कुछ मुद्दत तक सब आदमी इस्लाम पर क़ायम रहे, फिर उनमें ऐसे लोग पैदा हो गए जिन्होंने इस्लाम की तालीम भुला दी। किसी ने पत्थरों, पेड़ों, साँपों और दूसरे इनसानों को ख़ुदा बना लिया। कोई आप ही ख़ुदा बन बैठा और किसी ने कहा, मैं आज़ाद हूँ, मैं अपने मन की करूँगा चाहे अल्लाह का हुक्म कुछ भी हो। इस तरह दुनिया में कुफ़्र की शुरुआत हुई, जिसका मतलब है अल्लाह का हुक्म मानने से इनकार करना।

पैग़म्बरों का सिलसिला

जब इनसानों में कुफ़्र बढ़ने लगा और उसकी वजह से बुराइयाँ फैलने लगीं तो अल्लाह ने अपने बहुत ही फ़रमाँबरदार ख़ास-ख़ास नेक बन्दों को यह काम सौंपा कि वे इन बिगड़े हुए लोगों को समझाएँ और उनको फिर से अल्लाह के हुक्मों पर चलनेवाला बनाने की कोशिश करें। ये नेक बन्दे पैग़म्बर, रसूल और नबी कहलाते हैं। पैग़म्बर और रसूल का मतलब है, अल्लाह का पैग़ाम उसके बन्दों तक पहुँचानेवाला। नबी का मतलब है, अल्लाह से ख़बरें पाकर लोगों को बतानेवाला। जिन नबियों को अल्लाह ने किताब दी उनको रसूल कहते हैं। अल्लाह के सबसे पहले पैग़म्बर हज़रत आदम (अलैहि॰) थे। उनके बाद हज़ारों पैग़म्बर दुनिया के अलग-अलग मुल्कों और क़ौमों में आते रहे। वे सब बड़े नेक, सच्चे और पाक लोग थे। उन सब ने इनसानों को एक ही दीन की तालीम दी और वह दीन इस्लाम था। सबसे आख़िरी पैग़म्बर रसूले-पाक हज़रत मुहम्मद (सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम) थे। आप (सल्ल॰) पर पैग़म्बरों के आने का सिलसिला ख़त्म हो गया। आप (सल्ल॰) के बाद न कोई पैग़म्बर आया है और न ही क़ियामत तक आएगा।

मशहूर है कि अलग-अलग ज़मानों में अल्लाह ने अलग-अलग क़ौमों और देशों में अपने एक लाख चौबीस हज़ार पैग़म्बर भेजे। हज़रत आदम (अलैहि॰) के बाद और हमारे रसूले-पाक (सल्ल॰) से पहले आनेवाले मशहूर पैग़म्बरों के नाम ये हैं—

हज़रत नूह (अलैहि॰), हज़रत हूद (अलैहि॰), हज़रत सालिह (अलैहि॰), हज़रत इबराहीम (अलैहि॰), हज़रत इसमाईल (अलैहि॰), हज़रत इसहाक़ (अलैहि॰), हज़रत याक़ूब (अलैहि॰), हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰), हज़रत अय्यूब (अलैहि॰), हज़रत लूत (अलैहि॰), हज़रत यूनुस (अलैहि॰), हज़रत शुऐब (अलैहि॰), हज़रत मूसा (अलैहि॰), हज़रत दाऊद (अलैहि॰), हज़रत सुलैमान (अलैहि॰), हज़रत ज़करिय्या (अलैहि॰), हज़रत यहया (अलैहि॰) और हज़रत ईसा (अलैहि॰)।

हर पैग़म्बर का नाम लेते वक़्त 'अलैहिस्सलाम' ज़रूर कहना चाहिए। इसका मतलब है 'उनपर अल्लाह की सलामती हो'। इसी तरह जब हम अपने रसूले-पाक का नाम लें तो 'सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम' ज़रूर कहें। इसका मतलब है 'उनपर अल्लाह की रहमत और सलामती हो'। इसको सबसे छोटा दुरूद भी कहते हैं।

रसूलों और नबियों की ज़िन्दगी बड़ी पाक होती थी। वे कभी कोई गुनाह नहीं करते थे। अल्लाह उनको हर बुरी बात, हर बुरे काम और हर बुरे ख़याल से बचाता था। इसलिए उनको मासूम या पाक कहा जाता है।

हज़रत नूह (अलैहि॰)

हज़रत आदम (अलैहि॰) की नस्ल से हज़रत नूह (अलैहि॰) बहुत मशहूर पैग़म्बर हुए। अल्लाह ने उनको बड़ी लम्बी ज़िन्दगी दी। वे लोगों को साढ़े नौ सौ (950) साल तक इस्लाम की तरफ़ बुलाते रहे लेकिन थोड़े-से लोगों के सिवा सबने इस्लाम क़बूल करने से इनकार कर दिया। आख़िर हज़रत नूह (अलैहि॰) ने अल्लाह से फ़रियाद की कि "ऐ पालनहार! इन हक़ के इनकारियों में से किसी को ज़मीन पर बाक़ी न छोड़ क्योंकि ये तेरे दूसरे बन्दों को भी ग़लत रास्ते पर चलाएँगे।"

अल्लाह ने हज़रत नूह (अलैहि॰) की दुआ क़बूल की और उनको हुक्म दिया कि एक नाव तैयार करें। वे एक बहुत बड़ी नाव तैयार करने लगे। हक़ के इनकारी उनकी हँसी उड़ाते थे, लेकिन उन्होंने परवाह न की। जब नाव बनकर तैयार हो गई तो एक तनूर (तन्दूर) से पानी उबलने लगा और आसमान से मूसलाधार बारिश होने लगी और चारों तरफ़ ज़बरदस्त बाढ़ आ गई। हज़रत नूह (अलैहि॰) तमाम मुसलमानों को लेकर नाव पर सवार हो गए। यह नाव 'जूदी' नाम के एक पहाड़ पर जाकर ठहर गई और सारे मुसलमान बच गए। दूसरी तरफ़ सारे हक़ के इनकारी बाढ़ में डूब गए।

हज़रत हूद (अलैहि॰) और हज़रत सालिह (अलैहि॰)

हज़रत नूह (अलैहि॰) की नस्ल से हज़रत हूद (अलैहि॰) और हज़रत सालिह (अलैहि॰) मशहूर पैग़म्बर हुए। हज़रत हूद (अलैहि॰) की क़ौम का

नाम 'आद' था और हज़रत सालिह (अलैहि॰) की क़ौम का 'समूद'। ये क़ौमें बड़ी खुशहाल थीं। थोड़े लोगों के सिवा उन सबने भी अल्लाह की नाफ़रमानी की और अपने पैग़म्बरों को झूठा कहा। अल्लाह ने उनपर अज़ाब भेजा और सारे हक़ के इनकारी तबाह हो गए। उनके बनाए हुए मकानों के खण्डर आज भी इबरत के निशान बने हुए हैं।

हज़रत इबराहीम (अलैहि॰)

हज़रत हूद (अलैहि॰) और हज़रत सालिह (अलैहि॰) के लगभग चार सौ साल बाद हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) बहुत बड़े पैग़म्बर हुए। वे भी हज़रत नूह (अलैहि॰) की नस्ल से थे। वे आज से लगभग चार हज़ार साल पहले इराक़ के एक शहर 'उर' में पैदा हुए। उनका लक़ब 'ख़लीलुल्लाह' (अल्लाह का दोस्त) है। वे सब चीज़ों से मुँह मोड़कर एक अल्लाह के हो गए थे इसलिए उनको 'हनीफ़' (यकसू) भी कहा जाता है।

नबियों के बाप

हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) को 'अबुल-अम्बिया' (नबियों के बाप) या 'जद्दुल-अम्बिया' (नबियों के दादा) भी कहा गया है। क्योंकि उनके बाद आनेवाले तमाम नबी और रसूल उन्हीं की औलाद से हुए। हमारे रसूले-पाक (सल्ल॰) भी हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) की औलाद से थे।

आग बाग़ बन गई

हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) 'उर' शहर में पले-बढ़े और जवान हुए। इराक़ के लोग उस ज़माने में सूरज, चाँद, सितारों और बुतों की पूजा करते थे और उनका बादशाह नमरूद अपने आपको ख़ुदा कहता था। हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ने उनको इस्लाम की तरफ़ बुलाया और सबको छोड़कर सिर्फ़ एक अल्लाह की इबादत करने को कहा तो वे सब उनके दुश्मन बन गए। उन्होंने हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) को बहुत डराया-धमकाया, लेकिन वे उनको बराबर अल्लाह की तरफ़ बुलाते रहे। एक दिन मौक़ा पाकर हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ने उनके बुतों को तोड़-फोड़ दिया। इसपर बादशाह ने उनको धधकती हुई आग के बड़े अलाव में डाल दिया। अल्लाह के हुक्म से आग बुझ गई और हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) के लिए बाग़ बन गई। वे उसमें से ज़िन्दा और सही सलामत बाहर निकल आए।

वतन छोड़ दिया

इस घटना के बाद हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ने अपना वतन छोड़ दिया। वे अपनी बीवी सारा (रज़ि॰) और भतीजे हज़रत लूत (अलैहि॰) के-साथ सीरिया और फ़िलस्तीन देश की तरफ़ हिजरत कर गए। उस ज़माने में उस इलाक़े को 'कनआन' कहा जाता था। हिजरत के वक़्त इबराहीम (अलैहि॰) की कोई औलाद न थी। चलते वक़्त उन्होंने अल्लाह से दुआ की, "ऐ अल्लाह! मुझे नेक औलाद अता फ़रमा।"

हज़रत हाजिरा (रज़ि॰) से शादी

कनआन में एक बार सख़्त सूखा पड़ा तो हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) मिस्र चले गए। वहाँ उन्होंने एक मिस्री औरत से शादी कर ली। उनकी दूसरी बीवी का नाम हाजिरा (रज़ि॰) था—कुछ किताबों में लिखा है कि वे मिस्र के बादशाह की बेटी थीं—कुछ मुद्दत के बाद हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) हाजिरा (रज़ि॰) को साथ लेकर मिस्र से कनआन वापस आ गए।

दुआ पूरी हुई

कनआन में रहते हुए हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) जब बहुत बूढ़े हो गए तो अल्लाह ने उनकी वह दुआ पूरी कर दी जो उन्होंने अपना वतन छोड़ते हुए माँगी थी। हज़रत हाजिरा (रज़ि॰) से उनको एक बेटा पैदा हुआ जिसका नाम उन्होंने इसमाईल रखा।

फ़ारान की वादी

हज़रत इसमाईल (अलैहि॰) अभी दूध पीते बच्चे थे कि अल्लाह ने हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) को हुक्म दिया कि इसमाईल और उसकी माँ हाजिरा (रज़ि॰) को फ़ारान की वादी में छोड़ आओ। 'वादी' किसी नाले या दरिया के बाढ़ के पानी के गुज़रने के रास्ते को भी कहते हैं और किसी घाटी या दो पहाड़ों के बीच की ज़मीन को भी कहते हैं। फ़ारान की वादी कनआन से बहुत दूर अरब देश में थी।

अरब देश

अरब देश को ही आजकल ''ममलिकते-सऊदी अरब'' (Kingdom of Saudi Arabia) कहते हैं। यह एशिया महाद्वीप के दक्षिणी-पश्चिमी किनारे में फैला हुआ है और दुनिया का सबसे बड़ा जज़ीरानुमा (प्रायद्वीप) (भूमि का वह भाग जो तीन ओर से समुद्री पानी से घिरा हो) है। इसके पूरब में ईरान की खाड़ी और पश्चिम में लाल महासागर और दक्षिण में हिन्द महासागर और अरब महासागर है। इसके उत्तर में कुवैत, इराक़ और उरदुन और दक्षिण में यमन और ओमान देश हैं। यह बहुत बड़ा देश है और आठ लाख तेहत्तर हज़ार वर्गमील (मुरब्बा मील) में फैला हुआ है। इसका ज़्यादातर हिस्सा रेगिस्तानी है। जगह-जगह रूखी-सूखी झाड़ियाँ, सैंकड़ों मील लम्बे-चौड़े रेगिस्तान और पथरीले मैदान मिलते हैं। इन रेगिस्तानों में कहीं-कहीं ऊँचे टीले और हरी-भरी घाटियाँ भी हैं जिनमें नहरें बहती हैं और खजूर, इंजीर, अंगूर और ज़ैतून के बाग़ पाए जाते हैं जिसको नख़लिस्तान कहते हैं। नख़लिस्तान में थोड़ी-बहुत खेती भी होती है। अरब-देश में बारिश बहुत कम होती है। मौसम गर्म और सूखा है। देश में कोई बड़ी नदी नहीं बहती। लेकिन बहुत-से छोटे-छोटे नदी-नाले हैं जो साल में कई महीने सूखे पड़े रहते हैं।

ऊँट, घोड़े और भेड़-बकरियाँ अरब के ख़ास जानवर हैं। अरबी घोड़ा बहुत ख़ूबसूरत और फुरतीला होता है। अरब का ऊँट एक बार पेट भरकर पानी पी लेता है तो फिर उसे कई दिनों तक प्यास नहीं सताती। रेतीले मैदानों में जहाँ घोड़ा नहीं चल पाता, यह बिना थके बहुत तेज़ चल सकता है।

इस देश के बीच में नज्द का इलाक़ा है जो चारों तरफ़ चटियल पहाड़ों और रेगिस्तान से घिरा हुआ है। उससे हटकर जो इलाक़ा लाल महासागर के किनारे-किनारे लम्बाई में उरदुन की सीमा से शुरू होकर यमन की सीमा पर ख़त्म होता है, उसे 'हिजाज़' कहते हैं। इस इलाक़े में हरी-भरी वादियाँ और रेतीले मैदान साथ-साथ फैलते चले गए हैं। फ़ारान की वादी हिजाज़ ही के इलाक़े में थी।

ज़मज़म

हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ने अल्लाह के हुक्म के आगे सिर झुका दिया। वे नन्हे इसमाईल और उनकी माँ हाजिरा (रज़ि॰) को साथ लेकर फ़ारान की वादी में आए और माँ-बेटे को एक पहाड़ी की चोटी पर छोड़ दिया। उस वक़्त यह जगह बिलकुल वीरान और ग़ैर-आबाद थी। हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ने कुछ खजूरें और पानी का एक मशकीज़ा (चमड़े का बरतन जिसमें पानी रखा जाता है) हाजिरा (रज़ि॰) के हवाले किया और उनको अल्लाह के सहारे छोड़कर वहाँ से चल पड़े। हाजिरा (रज़ि॰) ने आगे बढ़कर उनसे पूछा, "आप इस वीराने में हमें छोड़कर कहाँ जा रहे हैं?" उन्होंने फ़रमाया, "अल्लाह का यही हुक्म है।" यह सुनकर हाजिरा (रज़ि॰) ने कहा, "फिर अल्लाह हमें ज़ाया (नष्ट) नहीं करेगा" और चुपचाप नन्हे इसमाईल (अलैहि॰) के पास आ बैठीं। जब मशकीज़े का पानी ख़त्म हो गया तो माँ-बेटे को प्यास सताने लगी। नन्हे इसमाईल प्यास के मारे तड़पने लगे। हाजिरा (रज़ि॰) परेशान होकर पास की पहाड़ी 'सफ़ा' पर चढ़ गईं कि कोई आदमी या क़ाफ़िला नज़र आए तो उसे मदद के लिए बुलाएँ। मगर जब कोई नज़र न आया तो वे पास की दूसरी पहाड़ी 'मरवा' पर चढ़ गईं मगर वहाँ से भी कोई नज़र न आया। इस तरह उन्होंने सफ़ा और मरवा पर सात चक्कर लगाए। आख़िरी बार जब वे मरवा की पहाड़ी से उतरीं तो उन्होंने देखा कि नन्हे इसमाईल जहाँ एड़ियाँ रगड़ रहे थे वहाँ कुछ नमी नज़र आती है। उन्होंने वहाँ से मिट्टी हटाई तो ज़मीन से पानी फूट-फूटकर बाहर निकलने लगा। उनके मुँह से अचानक निकला, "ज़मज़म" जिसका मतलब है 'ठहर जा'। यह चश्मा (पानी का स्रोत) ज़मज़म के नाम से मशहूर हो गया। हाजिरा (रज़ि॰) ने उसके चारों तरफ़ मिट्टी से मुंडेर बना दी। इस तरह पानी बहने से रुक गया। अब हाजिरा (रज़ि॰) ने ख़ुद भी पानी पिया और बच्चे को भी पिलाया। फिर वे इत्मीनान से उन्हें दूध भी पिलाने लगीं।

मक्का शहर की बुनियाद

फिर उधर से एक क़ाफ़िला गुज़रा। उस काफ़िले में जुरहुम क़बीले के लोग थे। उस वीराने में पानी देखकर वे ख़ुशी से खिल उठे। उन्होंने हाजिरा (रज़ि॰) से वहाँ आबाद होने की इजाज़त माँगी। उन्होंने इस शर्त पर इजाज़त दी कि ज़मज़म की मालिक वे ख़ुद रहेंगी और वे लोग उनके खाने-पीने और दूसरी ज़रूरतों का ख़याल रखेंगे। इस तरह जुरहुम क़बीला वहाँ आबाद हो गया। धीरे-धीरे उनकी आबादी बढ़ती गई और वहाँ एक बड़ी बस्ती आबाद हो गई जिसे अल्लाह ने मक्का का नाम दिया। आज मक्का एक बड़ा शहर है और सारी दुनिया के मुसलमानों के लिए हिदायत का मर्कज़ (केन्द्र) है। ज़मज़म अब भी मौजूद है लेकिन उसका पानी नीचे उतरकर कुएँ की शक्ल अपना चुका है।

प्यारे बेटे की क़ुरबानी

हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) कभी-कभी कनआन से हाजिरा (रज़ि॰) और हज़रत इसमाईल (अलैहि॰) का हाल-चाल पूछने मक्का आते और कुछ दिन उनके साथ ठहरते थे। हज़रत इसमाईल (अलैहि॰) जब उसके साथ दौड़ने की उम्र के हो गए तो एक दिन हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) ने उनसे कहा, ''बेटा, मैं ख़ाब देखता हूँ कि मैं तुझे ज़िब्ह कर रहा हूँ, अब तू बता, तेरा क्या ख़याल है?'' हज़रत इसमाईल (अलैहि॰) ने कहा, ''अब्बा जान! आपको जो हुक्म दिया जा रहा है उसे पूरा कीजिए। अल्लाह ने चाहा तो आप मुझे सब्र करनेवालों में पाएँगे।''

जब दोनों ने अल्लाह का हुक्म मान लिया तो हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) बेटे को आबादी से बाहर 'मिना' के मक़ाम पर ले गए और उनको माथे के बल गिराकर उनकी गर्दन पर छुरी रख दी। उस वक़्त 'ग़ैब' से अल्लाह ने उनको पुकारा, ''ऐ इबराहीम! तूने ख़ाब सच कर दिखाया, हम नेकी करनेवालों को ऐसा ही बदला दिया करते हैं। (बेटे की जगह मेंढा रख दिया गया और क़ुरबानी हो गई।) यह एक बड़ी आज़माइश थी और हमने एक बड़ी क़ुरबानी फ़िदया (बदले) में देकर उस बच्चे को छुड़ा लिया।''

इस वाक़िआ की याद में मुसलमान हर साल ईदुल-अज़हा (बक़रईद) के मौक़े पर क़ुरबानी करते हैं।

हज़रत इसहाक़ (अलैहि॰) और उनकी औलाद

क़ुरबानी के वाक़िए के कुछ मुद्दत बाद अल्लाह ने हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) को एक बेटा और दिया जिसका नाम उन्होंने इसहाक़ रखा। उनकी माँ सारा (रज़ि॰) थीं। इसहाक़ (अलैहि॰) के बेटे हज़रत याक़ूब (अलैहि॰) थे जिनका लक़ब इसराईल था। इसलिए उनकी औलाद बनी-इसराईल (इसराईल के बेटे) कहलाई। बनी-इसराईल में बहुत-से पैग़म्बर हुए। उन सबको अम्बिया-ए-बनी-इसराईल कहा जाता है। हज़रत यूसुफ़ (अलैहि॰), हज़रत मूसा (अलैहि॰), हज़रत हारून (अलैहि॰), हज़रत दाऊद (अलैहि॰), हज़रत सुलैमान (अलैहि॰), हज़रत ज़करिय्या (अलैहि॰), हज़रत यहया (अलैहि॰), और दूसरे बहुत-से नबियों का रिश्ता बनी-इसराईल ही से था।

दुनिया की पहली मस्जिद

जब हज़रत इसमाईल (अलैहि॰) की उम्र लगभग तीस (30) साल थी तो एक दिन हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) अचानक मक्का पहुँचे और उनसे फ़रमाया, "अल्लाह ने मुझे यहाँ घर बनाने का हुक्म दिया है, क्या तुम इस काम में मेरी मदद करोगे?" हज़रत इसमाईल (अलैहि॰) ने कहा, "जी हाँ, मैं आपकी मदद करूँगा।" फिर एक जगह जो आसपास की ज़मीन से ऊँची थी, उस पर बाप-बेटे ने अपने हाथों से मस्जिद की बुनियादें उठाईं। हज़रत इसमाईल (अलैहि॰) पत्थर उठाकर लाते और हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) उन्हें दीवार में चुनते जाते। इस तरह नौ (9) हाथ ऊँची, बत्तीस (32) हाथ लम्बी और बाईस (22) हाथ चौड़ी कच्चे फ़र्श की यह मस्जिद बनकर तैयार हो गई। इस मस्जिद का नाम 'ख़ाना काबा' और 'बैतुल्लाह' यानी 'अल्लाह का घर' रखा गया। 'अल्लाह का घर' का मतलब है वह ख़ास जगह जहाँ अल्लाह की इबादत की जाए।

बाप-बेटे की दुआ

जब हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) और हज़रत इसमाईल (अलैहि॰) ख़ाना काबा की दीवारें उठा रहे थे तो दुआ करते जाते थे—

> "ऐ हमारे पालनहार! तू हमारी इस कोशिश को क़बूल फ़रमा, तू सब कुछ सुनता और जानता है। ऐ हमारे पालनहार! तू हम दोनों को अपना फ़रमाँबरदार (हुक्म माननेवाला) बना और हमारी नस्ल में एक ऐसी क़ौम उठा जो तेरा हुक्म माननेवाली हो। हमें अपनी इबादत के तरीक़े बता और हम पर रहमत की नज़र रख कि तू बड़ा माफ़ करनेवाला और मेहरबान है। ऐ हमारे पालनहार! तू इन लोगों में इन्हीं की क़ौम से एक ऐसा रसूल उठा जो इनको तेरी आयतें सुनाए और इनको किताब और समझदारी की तालीम (शिक्षा) दे और इनके दिलों को पाक करे, बेशक तू बड़ी ताक़तवाला और हिकमतवाला है।" (क़ुरआन, सूरा-2 बक़रा, आयतें-126-129)

अल्लाह ने बाप-बेटे की यह दुआ क़बूल की। इबराहीम (अलैहि॰) को हुक्म हुआ कि हज का आम एलान कर दें कि लोग पैदल और सवारी पर दूर और नज़दीक से आएँ, काबा का तवाफ़ करें और जानवरों की क़ुरबानी करें। हज इस्लाम का बुनियादी 'रुक्न' बन गया। हज़रत हाजिरा (रज़ि॰) की तरह सफ़ा और मरवा के सात चक्कर लगाना भी ज़रूरी ठहरा। अल्लाह ने काबा को सारी दुनियावालों के लिए हिदायत का मर्कज़ बना दिया।

इसके कुछ साल बाद इबराहीम (अलैहि॰) का 175 साल की उम्र में इन्तिक़ाल हो गया। उनका रौज़ा फ़िलस्तीन में बैतुल-मक़दिस के क़रीब हबरून (अल-ख़लील) में है।

हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) और हज़रत इसमाईल (अलैहि॰) की दुआ का आख़िरी हिस्सा इस तरह पूरा हुआ कि लगभग दो हज़ार साल बाद उनकी औलाद में से अल्लाह के आख़िरी नबी हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) इस दुनिया में आए और दीने-इस्लाम हमेशा के लिए मुकम्मल हो गया।

हज़रत इसमाईल (अलैहि॰) का घराना

हज़रत इबराहीम (अलैहि॰) के दोनों बेटों को भी अल्लाह ने नबी बनाया। हज़रत इसहाक़ (अलैहि॰) शाम (सीरिया) और फ़िलस्तीन के लोगों की हिदायत के काम की और हज़रत इसमाईल (अलैहि॰) को ख़ाना काबा की देखभाल और अरब के लोगों की हिदायत की ज़िम्मेदारी सौंपी गई।

हज़रत इसमाईल (अलैहि॰) का इन्तिक़ाल एक सौ तीस (130) साल की उम्र में हुआ तो नाबित, जो उनके बारह बेटों में सबसे बड़े थे, उनके जानशीन (उत्तराधिकारी) बने। नाबित के इन्तिक़ाल के बाद जुरहुम क़बीला के लोगों ने ज़बरदस्ती ख़ाना काबा और मक्का पर क़ब्ज़ा कर लिया। नतीजा यह हुआ कि इबराहीम (अलैहि॰) की औलाद में बहुत थोड़े लोग ही मक्का में रहे, बाक़ी सब अरब के इलाक़ों में इधर-उधर बिखर गए। नाबित-बिन-इसमाईल की नस्ल में अदनान बड़े मशहूर हुए। उनकी औलाद में अल्लाह ने बड़ी बरकत दी और अरब के बहुत-से क़बीले उनकी नस्ल से हुए।

क़ुरैश

अदनान की नस्ल से दसवीं पीढ़ी में फ़िह्र-बिन-मालिक पैदा हुए। उनका लक़ब क़ुरैश था। फ़िह्र के ज़माने में यमन के बादशाह हस्सान ने मक्का पर हमला किया। फ़िह्र ने उसका मुक़ाबला किया और उसे हराकर क़ैद कर लिया। इस जीत से फ़िह्र सारे अरब में मशहूर हो गए। हिजाज़ में क़ुरैश व्हेल मछली को कहा जाता है जो समुद्र का सबसे बड़ा जानवर है। चूँकि फ़िह्र और उनकी औलाद अरब के क़बीलों में सबसे ताक़तवर थे इसलिए उनका लक़ब क़ुरैश पड़ गया।

क़ुसई-बिन-किलाब

फ़िह्र या क़ुरैश की नस्ल से छठी पीढ़ी में क़ुसई-बिन-किलाब पैदा हुए। जब वे जवान हुए उस वक़्त ख़ाना काबा और मक्का पर बनू-ख़ुज़ाआ का क़ब्ज़ा था। इस क़बीले ने क़बीला जुरहुम को हरा कर तीन-चार साल पहले

ही उनपर क़ब्ज़ा कर लिया था। अब ये लोग बड़ी बुराइयों में पड़ गए थे। क़ुसई बड़े अक़्लमन्द, बहादुर और हिम्मतवाले इनसान थे। उन्होंने मक्का के पास-पड़ोस में बसे क़ुरैश के तमाम लोगों को जमा किया और बनू-ख़ुज़ाआ को मक्का से निकालकर शहर पर क़ब्ज़ा कर लिया और काबा की देखभाल भी अपने हाथ में ले ली।

क़ुरैश अरब का सबसे इज़्ज़तदार क़बीला

अरब में काबा से क़रीब और दूर रहनेवाले तमाम लोग ख़ाना काबा को बहुत मुक़द्दस समझते थे और उसकी हिफ़ाज़त और देखभाल करनेवाले की सबसे ज़्यादा इज़्ज़त करते थे। ख़ाना काबा और मक्का शहर पर क़ब्ज़ा करने के बाद क़ुसई अरब का सबसे इज़्ज़तदार क़बीला बन गया।

मक्का में रियासत का क़ियाम

फ़िह्र की औलाद जो क़ुरैश कहलाती थी और अरब के अलग-अलग इलाक़ों में आबाद थी, क़ुसई ने उन सबको मक्का बुला लिया और शहर को उनके बीच बाँटकर एक-एक हिस्से में एक-एक ख़ानदान को आबाद कर दिया। इस तरह मक्का में एक रियासत क़ायम हो गई और क़ुरैश के तमाम ख़ानदानों ने क़ुसई को अपना सरदार मान लिया। वे क़ुरैश के लड़कों और लड़कियों की शादियाँ कराते थे, उनके झगड़े निपटाते थे, किसी दूसरे क़बीले से लड़ाई छिड़ जाए तो उसका मुक़ाबला करते थे। हज का सारा इन्तिज़ाम भी उनके ही हाथ में था। वे हाजियों की मेहमानदारी करते, उनको खाना खिलाते, पानी पिलाते, उनके लिए ख़ाना काबा खोलते और बन्द करते थे। उन्होंने क़ुरैश के सरदारों को जमा करके एक क़ौमी मजलिस बनाई और एक मकान बनवाया जिसमें क़ुरैश के सरदार जमा होकर सलाह-मशवरा करते थे। इस मकान को दारुन-नदवा कहते थे।

क़ुसई जब बूढ़े हो गए तो उन्होंने अपने बड़े बेटे अब्दुद्-दार को अपना जानशीन बनाया। क़ुसई की मौत के बाद अब्दुद्-दार क़ुरैश के सरदार बन गए और काबा की देखभाल की ज़िम्मेदारी उनके कन्धों पर आ गई।

अब्दे-मनाफ़ : मक्का का चाँद

क़ुसई के दूसरे बेटे और अब्दुद्-दार के छोटे भाई का नाम मुग़ीरा था। लेकिन वे अब्दे-मनाफ़ के नाम से मशहूर थे। वे बहुत क़ाबिल, बहादुर और ख़ूबसूरत थे, इसलिए सारे अरब में मशहूर थे। लोग उनको मक्का के चाँद कहा करते थे। जब तक अब्दुद्-दार और अब्दे-मनाफ़ ज़िन्दा रहे वे एक-दूसरे की इज़्ज़त करते रहे। लेकिन जब दोनों भाइयों का इन्तिक़ाल हो गया तो अब्दे-मनाफ़ के बड़े बेटे अब्दे-शम्स ने अब्दुद्-दार की औलाद को सरदार मानने से इनकार कर दिया। क़ुरैश के कुछ क़बीले अब्दुद्-दार की औलाद की तरफ़दारी करने लगे और कुछ अब्दे-शम्स के साथी बन गए। जब यह झगड़ा बहुत बढ़ गया तो कुछ बड़े और समझदार लोग बीच में पड़े और उन्होंने मक्का की हुकूमत की ज़िम्मेदारियाँ दोनों में बाँट दीं।

हाजियों को खाना खिलाने और पानी पिलाने की ज़िम्मेदारी अब्दे-शम्स को दी गई और ख़ाना काबा खोलने और बन्द करने, लड़ाई के मौक़े पर झण्डा उठाने और सलाह-मशवरे के लिए क़ौमी मजलिस के इन्तिज़ाम की ज़िम्मेदारी अब्दुद्-दार की औलाद के पास रही।

हाशिम

इस इन्तिज़ाम के कुछ ही मुद्दत के बाद अब्दे-शम्स ने अपनी सारी ज़िम्मेदारियाँ अपने भाई हाशिम के हवाले कर दी। हाशिम बड़े बहादुर और दरियादिल (दानशील) आदमी थे। उनका अस्ली नाम अम्र था। वे हाशिम के लक़ब से मशहूर थे। एक बार मक्का में ज़बरदस्त अकाल (क़हत) पड़ा तो उन्होंने शाम (सीरिया) से अनाज लाकर रोटियाँ पकवाईं। फिर बहुत-से ऊँट ज़िब्ह करके सालन पकवाया और रोटियों को चूरा करके उस सालन में डाल दिया। फिर सब लोगों को दावत दी कि वे आएँ और यह मालीदा खाएँ। 'हश्म' का मतलब है तोड़ना और कुचलना। रोटियों को तोड़कर सालन में मालीदा बनाने की वजह से उन्हें हाशिम कहा जाने लगा। अकाल ख़त्म हो जाने के बाद भी हाशिम ने इस तरीक़े को जारी रखा। वे हर साल हज के मौक़े पर हाजियों को अच्छे-से-अच्छा खाना खिलाते और उनके लिए

पानी का ख़ास इन्तिज़ाम करते क्योंकि ज़मज़म का कुआँ बनू-जुरहुम बन्द कर गए थे और यह भी पता न था कि ज़मज़म का कुआँ कहाँ है। आम ज़िन्दगी में भी वे बड़े नेक और रहमदिल थे। ग़रीबों और कमज़ोरों की दिल खोलकर मदद करते थे। उनकी इन ख़ूबियों की वजह से लोग उनसे मुहब्बत करते थे और वे सारे अरब में इज़्ज़त की नज़रों से देखे जाते थे। हाशिम ने क़ुरैश के कारोबार को भी ख़ूब बढ़ाया। उनकी कोशिशों की वजह से मक्का अरब की सबसे बड़ी कारोबारी मंडी बन गया।

हाशिम ने कई शादियाँ की थीं। उनकी एक बीवी का नाम सलमा था। वे मक्का से तीन सौ (300) मील दूर पुराने शहर यसरिब (मदीना) की रहनेवाली थीं। उनका ताल्लुक़ यसरिब के क़बीला ख़ज़रज की एक शाख़ बनू-नज्जार से था और वे अम्र-बिन-ज़ैद नज्जारी की बेटी थीं। हाशिम कारोबार के लिए सीरिया जाते हुए यसरिब में ठहरा करते थे। ऐसे ही एक सफ़र में उन्होंने सलमा से शादी की और कुछ दिन यसरिब में ठहरने के बाद सीरिया चले गए। जब ग़ज़्ज़ा पहुँचे तो बीमार पड़ गए और वहीं उनका इन्तिक़ाल हो गया। उनके इन्तिक़ाल के बाद सलमा से उनका एक बेटा पैदा हुआ। उसका नाम पहले आमिर और फिर शैबा रखा गया क्योंकि उसके सिर पर कुछ बाल सफ़ेद थे और शैबा के मानी बूढ़े के हैं।

अब्दुल-मुत्तलिब

मक्का में हाशिम के इन्तिक़ाल की ख़बर पहुँची तो उनके छोटे भाई मुत्तलिब उनके जानशीन हुए। उधर हाशिम के बेटे नौजवानी तक यसरिब में अपनी माँ के पास परवरिश पाते रहे। वे बड़े ही नेक और ख़ूबसूरत नौजवान थे। उनकी ख़ूबियों की वजह से लोग उन्हें शैबतुल हम्द (ऐसा बूढ़ा जो तारीफ़ के लायक़ हो) कहा करते थे। एक बार यसरिब के एक आदमी ने मुत्तलिब के सामने उनके भतीजे शैबा की बहुत तारीफ़ की। मुत्तलिब अपने भतीजे की तारीफ़ सुनकर उससे मिलने को बेताब हो गए और यसरिब जाकर शैबा को अपने साथ ऊँट पर बिठाकर मक्का ले आए। क़ुरैश के लोगों ने देखा तो समझा कि वे मुत्तलिब के गुलाम हैं, इसलिए वे शैबा को

अब्दुल-मुत्तलिब (मुत्तलिब का गुलाम) कहने लगे। मुत्तलिब ने उनको बहुत समझाया कि यह मेरे भाई हाशिम का लड़का शैबा है, लेकिन लोगों में अब्दुल-मुत्तलिब नाम कुछ ऐसा मशहूर हुआ कि वे उनका अस्ली नाम (शैबा) ही भूल गए। कुछ मुद्दत के बाद मुत्तलिब अपने कारोबार के सिलसिले में यमन गए और वहीं उनका इन्तिक़ाल हो गया। अब अब्दुल-मुत्तलिब उनके जानशीन हुए। वे क़ुरैश में सबसे ज़्यादा ख़ूबसूरत, सबसे ज़्यादा तन्दुरुस्त, सबसे ज़्यादा अक़्लमन्द, सबसे ज़्यादा नर्म-मिज़ाज और सबसे ज़्यादा बहादुर, सख़ी और इनसाफ़-पसन्द थे। वे एक अल्लाह को मानते थे और उन सब बुराइयों से दूर थे जिनमें क़ुरैश और अरब के दूसरे लोग पड़े हुए थे। उनकी क़ौम के लोग उनसे बहुत मुहब्बत करते। उनकी क़ौम में उन्हें जो इज़्ज़त मिली वह इससे पहले किसी को नहीं मिली थी। वे हाजियों की ख़ूब ख़िदमत करते और उनको दिल खोलकर खिलाते-पिलाते थे। इस तरह उनकी नेकी और दरियादिली पूरे अरब में मशहूर हो गई।

ज़मज़म मिल गया

कई सौ साल पहले जब जुरहुम क़बीले के लोगों को मक्का से निकाला गया था तो वे मक्का से जाते हुए ज़मज़म के कुएँ को बन्द कर गए थे। ज़मज़म के कुएँ को दोबारा ढूँढ़ निकालने की ख़ुशनसीबी अब्दुल-मुत्तलिब के हिस्से में आई। कहा जाता है कि अल्लाह ने ख़ाब में उन्हें ज़मज़म की जगह बताई। उस वक़्त उनका एक ही बेटा हारिस था। उसको साथ लेकर उन्होंने ख़ाब में बताई गई जगह पर खुदाई का काम शुरू किया तो ज़मज़म का कुआँ निकल आया। इससे उनकी इज़्ज़त और नामवरी और बढ़ गई।

अजीब मन्नत

अब्दुल-मुत्तलिब ने ज़मज़म की खुदाई के वक़्त एक अजीब मन्नत यह मानी कि अगर अल्लाह मुझे दस बेटे देगा तो मैं उनमें से एक को अल्लाह की राह में क़ुरबान कर दूँगा। जब अल्लाह ने उनकी यह दुआ पूरी कर दी तो एक दिन वे अपने सब बेटों को साथ लेकर ख़ाना काबा गए ताकि पाँसा फेंककर मालूम किया जा सके कि किस बेटे को क़ुरबान किया जाए।

जनाब अब्दुल्लाह

जब पाँसा फेंका गया तो अब्दुल्लाह का नाम निकला। उस वक़्त उनकी उम्र सत्रह (17) साल थी और वे अब्दुल-मुत्तलिब के सबसे ख़ूबसूरत और प्यारे बेटे थे। अब्दुल-मुत्तलिब अपने इरादे के पक्के थे। उन्होंने हाथ में छुरी उठाई और अब्दुल्लाह को क़ुरबान करना चाहा। इतने में क़ुरैश के सब लोग जमा हो गए और उन्होंने अब्दुल-मुत्तलिब का हाथ पकड़कर उन्हें ऐसा करने से रोक दिया। फिर सबने यह सलाह दी कि आप अब्दुल्लाह पर और दस ऊँटों पर पाँसा फेंकें। अब दूसरी बार पाँसा फेंका गया, इस बार भी अब्दुल्लाह का ही नाम निकला। लोगों ने कहा, अब बीस ऊँटों पर और अब्दुल्लाह पर पाँसा फेंकें। इस बार भी अब्दुल्लाह का ही नाम आया। लोगों के बार-बार कहने पर अब्दुल-मुत्तलिब हर बार दस (10) ऊँट बढ़ाकर पाँसा फेंकते रहे मगर हर बार अब्दुल्लाह का ही नाम निकलता रहा। आख़िर सौ (100) ऊँट पर पहुँचकर पाँसा ऊँटों के नाम निकला। अब्दुल-मुत्तलिब बहुत खुश हुए और अब्दुल्लाह के बदले सौ (100) ऊँट क़ुरबान कर दिए।

जनाब अब्दुल्लाह की शादी

जब जनाब अब्दुल्लाह की उम्र पच्चीस (25) साल की हुई तो अब्दुल-मुत्तलिब ने उनकी शादी क़ुरैश की एक शाख़ बनू-ज़ुहरा के सरदार वह्ब-बिन-अब्दे-मनाफ़ की बेटी आमिना से कर दी। वे अपनी क़ौम की सबसे अच्छी लड़कियों में गिनी जाती थीं।

जनाब अब्दुल्लाह का इन्तिक़ाल

शादी के कुछ महीनों के बाद जनाब अब्दुल्लाह एक कारोबारी क़ाफ़िले के साथ सीरिया गए। वहाँ से लौटते हुए यसरिब पहुँचे तो बीमार हो गए और अपनी दादी सलमा के ख़ानदान में ठहर गए। वहाँ एक महीने के बाद उनका इन्तिक़ाल हो गया। यसरिब में ही उनकी क़ब्र बनी।

यही जनाब अब्दुल्लाह हमारे रसूले-पाक (सल्ल०) के वालिद थे जो नबी (सल्ल०) के पैदा होने से पहले ही दुनिया से चल बसे।

मक्का पर अबरहा की चढ़ाई

अब्दुल-मुत्तलिब को अपने प्यारे बेटे अब्दुल्लाह के इन्तिक़ाल की ख़बर मिली तो वे बड़े दुखी हुए। अभी उनका दुख हल्का भी नहीं हुआ था कि यमन के ईसाई सरदार अबरहा ने मक्का पर चढ़ाई कर दी। हुआ यह था कि अबरहा ने ख़ाना काबा के मुक़ाबले में यमन के शहर सनआ में एक बहुत बड़ा और शानदार गिरजाघर बनवाया और लोगों को यह हुक्म दिया कि वे इस गिरजा को काबा समझें और मक्का न जाकर इस गिरजाघर में आया करें। अरबों को काबा से बड़ी मुहब्बत थी। उन्हें अबरहा का हुक्म सुनकर बड़ा गुस्सा आया। उनमें से किसी ने चुपके से अबरहा के गिरजाघर में गन्दगी डाल दी। अबरहा को पता चला तो उसने एक बड़ी भारी फ़ौज के साथ मक्का पर चढ़ाई कर दी ताकि काबा को ध्वस्त करके अपने गिरजाघर के अपमान (बेहुरमती) का बदला ले। उसकी फ़ौज के साथ कुछ ख़ौफ़नाक हाथी भी थे।

अब्दुल-मुत्तलिब की अबरहा से मुलाक़ात

अबरहा की फ़ौज ने मक्का के बाहर पड़ाव डाला। वहाँ अब्दुल-मुत्तलिब के कुछ ऊँट चर रहे थे। अबरहा के फ़ौजियों ने उनको पकड़ लिया। अब्दुल-मुत्तलिब को पता चला तो वे अबरहा के पास गए और उससे कहा, "आपके फ़ौजियों ने मेरे ऊँट पकड़ लिए हैं, आप उन्हें वापस दे दें।"

उनकी बात सुनकर अबरहा बहुत हैरान हुआ क्योंकि वह समझ रहा था कि अब्दुल-मुत्तलिब उससे दरख़ास्त करेंगे कि वह काबा पर हमला न करे। उसने कहा, "ऐ क़ुरैश के सरदार, कितनी अजीब बात है कि तुम्हें अपने पाक घर काबा का कुछ भी ख़याल नहीं है और अपने कुछ ऊँटों के लिए परेशान हो!"

अब्दुल-मुत्तलिब उसकी बात सुनकर हँस पड़े और बोले, "इन ऊँटों का मालिक मैं हूँ इसलिए इनको छुड़ाने के लिए आपके पास आया हूँ। इस घर का भी एक मालिक है वह ख़ुद ही उसकी हिफ़ाज़त करेगा।"

अबरहा गुस्से में तिलमिलाकर बोला, "मैं देखूँगा कि काबा का मालिक

उसको मेरे हाथ से कैसे बचाता है? —हाँ, तुम अपने ऊँट ले जाओ।"

इस सवाल-जवाब के बाद अब्दुल-मुत्तलिब वापस आ गए।

खाया हुआ भूसा

अब्दुल-मुत्तलिब के वापस लौटने के बाद अबरहा ने फ़ौज को तैयारी का हुक्म दिया और मक्का पर चढ़ाई करने के लिए आगे बढ़ा। अचानक एक अजीब घटना घटी। आसमान पर चिड़ियों का झुण्ड छा गया। उनकी चोंचों में पत्थर के कंकड़ थे। वे उन कंकड़ों को अबरहा की फ़ौज पर बरसाने लगे। जिसपर भी कंकड़ पड़ते थे उसका जिस्म चेचक के दानों से गल-सड़ जाता था। इस तरह अबरहा, उसकी फ़ौज और हाथी सबके सब बुरी तरह मारे गए और उनकी लाशें खाए हुए भूसे जैसी हो गईं। उसके बाद बाढ़ आई और सारी लाशें पानी के साथ बहकर समुद्र में चली गईं। इस तरह अल्लाह ने अपने घर को बचा लिया।

यह घटना 571 ई॰ में घटी। क़ुरआन की सूरा-105 फ़ील में इसी घटना की चर्चा है। इस सूरा में अबरहा की फ़ौज को 'असहाबुल-फ़ील' यानी 'हाथीवाले' कहा गया है, क्योंकि उनके पास हाथी भी थे। इसी वजह से अरबों में यह साल 'आमुल-फ़ील' यानी 'हाथियों का साल' के नाम से मशहूर हो गया और वे उसी साल से तारीख़ों का हिसाब करने लगे।

बुराइयों का अन्धेरा

छठी सदी ईसवी का ज़माना, जिसमें अबरहा ने काबा को गिराने का इरादा किया, बुराइयों के अन्धेरे का ज़माना था। दुनिया के किसी देश में भी इस्लाम बाक़ी न था। हालाँकि पिछले पैग़म्बरों की तालीम की थोड़ी-बहुत झलक कुछ नेक लोगों में मिलती थी। लेकिन एक अल्लाह की सच्ची फ़रमाँबरदारी जिसमें किसी और की फ़रमाँबरदारी शामिल न हो, सारी दुनिया में कहीं नहीं पाई जाती थी, इस वजह से लोग तरह-तरह की बुरी आदतों में पड़ गए थे और उनके चाल-चलन बिगड़ गए थे। पिछले पैग़म्बरों पर अल्लाह की तरफ़ से जो किताबें उतरी थीं, उनका नामो-निशान तक मिट चुका था और अगर कुछ बचीं थीं तो वे अपनी अस्ली हालत में नहीं थीं, क्योंकि उनके मानने का दावा करनेवालों ने अपनी पसन्द के मुताबिक़ उन्हें बदल डाला था।

उस वक़्त के बड़े देशों में लोगों का हाल यह था कि ईरान में आग की पूजा की जाती थी। हिन्दुस्तान के लोग हवा, पानी, आग, सूरज और देवी-देवताओं की पूजा करते थे। अपने देवी-देवताओं के उन्होंने करोड़ों बुत बना रखे थे, जिनसे मुरादें माँगते थे। छुआछूत का चलन आम था। शराब पीने और जुआ खेलने का आम रिवाज था। चीन और कई दूसरे देशों में गौतम बुद्ध के बुतों की पूजा होती थी। उन लोगों ने और भी बहुत-से बुत बना रखे थे। किसी से औलाद माँगते थे, किसी से दौलत और किसी से बारिश। उनमें जादू-टोने और बहुत-सी दूसरी बुरी रस्मों का रिवाज भी था। फ़िलस्तीन, अरब और कुछ दूसरे देशों में यहूदी भी मौजूद थे। हालाँकि यहूदी एक ख़ुदा के माननेवाले थे और ईसा (अलैहि.) के अलावा उनसे पहले आनेवाले पैग़म्बरों को भी मानते थे लेकिन उन्होंने अपनी आसमानी किताबों में बदलाव कर डाला था और उनके चाल-चलन बिगड़ चुके थे। उनमें दौलत जमा करने का लालच बहुत बढ़ गया था और इस लालच में वे झूठ, धोखा, बेईमानी सबको दुरुस्त समझते थे। सूद खाते थे और फ़ैसला करते हुए इनसाफ़ से काम नहीं लेते थे। अमीर और ताक़तवर लोगों को छूट देते और

ग़रीबों और कमज़ोरों पर सख़्ती करते थे।

यूरोप के कई देशों में लोग बिलकुल गँवार और वहशी थे। उनमें से बहुतों का कोई धर्म या मज़हब नहीं था और कुछ लोग बुतों की पूजा करते थे।

मिस्र, रूम (रोम), सीरिया, यमन और कई दूसरे देशों में ईसाई धर्म के माननेवाले बसते थे। लेकिन ईसाइयों ने भी अपनी आसमानी किताब इनजील में बदलाव कर डाला था। वे एक ख़ुदा को छोड़कर तीन ख़ुदा मानते थे और हज़रत ईसा (अलैहि॰) को ख़ुदा का बेटा कहते थे। बहुत-से ईसाई हज़रत मरयम (अलैहि॰) और हज़रत ईसा (अलैहि॰) के बुत और तस्वीरें बनाकर उनको पूजते थे। उन्होंने हराम की गई चीज़ों को हलाल कर डाला था और उनके समाज में तरह-तरह की बुराइयाँ फैल चूकी थीं।

उस ज़माने में अरब के लोगों का हाल भी अजीब था। गेहुँआ रंग, ऊँचा माथा, ताक़तवर जिस्म, काली आँखें और तेज़ नज़रवाले ये लोग बड़े बहादुर, मेहमानों की ख़ातिरदारी करनेवाले, आज़ादी के मतवाले, दरियादिल और बात के पक्के थे। उनकी याद्दाश्त (स्मरण-शक्ति) बहुत अच्छी थी और वे शेरो-शायरी के दीवाने थे। अपनी ज़बान अरबी पर वे इतना नाज़ करते थे कि दुनिया के दूसरे देशों के लोगों को गूँगा कहते थे। लेकिन इन ख़ूबियों के साथ-साथ वे हर तरह की बुराइयों में भी लथ-पथ थे। उस ज़माने में अरब की आबादी कुछ लाख ही थी। उस आबादी का ज़्यादातर हिस्सा रेगिस्तान में बंजारों की ज़िन्दगी गुज़ारता था। वे ऊँटों, घोड़ों और भेड़-बकरियों के झुंड लिए चारे की तलाश में फिरते रहते थे। जहाँ कहीं पानी का कोई स्रोत (चश्मा), खजूर के कुछ पेड़ और हरियाली नज़र आती वहीं डेरे डाल देते। उन लोगों को बद्दू, बदवी या आराबी कहा जाता था। जो लोग शहरों और क़स्बों में आबाद थे उन्हें 'हज़री' (शहरी) कहते थे। मक्का, ताइफ़, यसरिब और ख़ैबर मशहूर शहर थे। शहरी हों या बदवी अरब के तमाम लोग तरह-तरह की बुराइयों में जकड़े हुए थे। कोई ऐसी हुकूमत नहीं थी जो अमन-शान्ति का माहौल बनाकर रखती। इसलिए अलग-अलग क़बीलों के लोग आपस में हमेशा लड़ते रहते थे। लड़ाई छिड़ने की वजह मामूली हुआ

करती थी। एक ने दूसरे के कुएँ से पानी ले लिया, एक का जानवर दूसरे की चरागाह में चला गया, एक क़बीले के शायर ने दूसरे क़बीले को नीचा दिखाते हुए कोई शेर कह दिया। बस, ऐसी ही छोटी-छोटी बातों पर लड़ाई छिड़ जाती जो कई-कई साल तक चलती रहती और सैकड़ों आदमी मारे जाते। कुछ लड़ाइयाँ तो तीस-तीस, चालीस-चालीस साल तक चलती रहती। ये लोग खुल्लम-खुल्ला शराब पीते, जुआ खेलते, बेशर्मी के काम करते, सूद खाते और क़ाफ़िलों को लूट लिया करते। कुछ ज़ालिम ऐसे भी थे जो अपनी बेटियों को ज़िन्दा ज़मीन में गाड़ देते थे और कुछ उनको अन्धे कुएँ में फेंककर या किसी पहाड़ की चोटी से गिराकर मार डालते थे।

उनके मज़हब का हाल भी अजीब था। ज़्यादातर लोग बुतों को पूजते थे। बुत पत्थर के भी होते थे और लकड़ी के भी। हर आदमी के पास एक छोटा बुत होता था और हर क़बीले का अपना-अपना बड़ा बुत भी होता था। वे बुतपरस्ती के ऐसे दीवाने थे कि अगर रास्ते में कोई ख़ूबसूरत पत्थर मिल जाता तो उसी को बुत बना लेते। उनमें से कुछ लोग चाँद, सूरज, तारों, पेड़ों, गुफ़ाओं और पहाड़ी चट्टानों की भी पूजा करते थे। वे एक अल्लाह पर यक़ीन रखते थे लेकिन कहते थे कि अल्लाह तक पहुँचने के लिए किसी देवी-देवता और बुतों का वसीला (माध्यम) ज़रूरी है। वे फ़रिश्तों को अल्लाह की बेटियाँ कहते थे। उनके देवी-देवताओं में उज़्ज़ा, लात और मनात बहुत मशहूर थे। उन्होंने उनके तरह-तरह के बुत बना रखे थे। वे उनकी पूजा करते, उनसे मुरादें माँगते और उनपर चढ़ावे चढ़ाते थे। उनको खुश करने के लिए जानवरों की क़ुरबानियाँ भी देते थे। वे भूत-प्रेत, बुरी रूहों, जिन्नों, नुजूमियों और मंत्र पढ़नेवालों को भी बहुत मानते थे। उन्होंने अल्लाह के घर काबा में भी तीन सौ साठ (360) बुत रख छोड़े थे और उसको दुनिया का सबसे बड़ा बुतख़ाना बना डाला था। बेशर्मी का हाल यह था कि मर्द और औरतें नंगे होकर काबा का तवाफ़ (परिक्रमा) करते। क़ुरैश का इज़्ज़तदार घराना जो काबा की देखभाल करने का ज़िम्मेदार था, वे भी इन बुराइयों मे पूरी तरह मुब्तला था। चारों तरफ़ घना अन्धेरा था। अचानक इस अन्धेरे मे नूर की एक किरण फूटी और हिदायत की उम्मीद का चिराग़ जगमगा उठा

बहार आई—बहार आई

मक्का पर चढ़ाई करनेवाले अबरहा और उसकी फ़ौज को बरबाद हुए पचास (50) दिन बीत चुके थे। रबीउल-अव्वल का महीना था। सर्दी का मौसम बीत चुका था और बहार का मौसम छा रहा था। पेड़ों में नए-नए पत्ते आने लगे थे। एक दिन जब रात का अन्धेरा छट रहा था, ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी और मक्का के ऊँचे-नीचे पहाड़ों पर सुबह की रौशनी बिखर रही थी, बीबी आमिना के घर हमारे रसूले-पाक हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) पैदा हुए। नन्हें रसूले-पाक (सल्ल०) इतने ख़ूबसूरत थे कि जो देखता था, देखता ही रह जाता था। जब यह ख़बर दादा अब्दुल-मुत्तलिब को मिली कि उनकी बेवा बहू को अल्लाह ने बेटा दिया है तो वे बहुत ख़ुश हुए। दौड़े-दौड़े घर आए, पोते को बेटे की निशानी समझकर सीने से लगा लिया और देर तक प्यार करते रहे।

रसूले-पाक (सल्ल०) की पैदाइश 12 रबीउल-अव्वल 20 अप्रैल 571 ई० सोमवार के दिन हुई। कुछ किताबों में आप (सल्ल०) की पैदाइश की तारीख़ बाइस (22) या तेईस (23) अप्रैल 571 ई० और रबीउल-अव्वल की नौ (9) तारीख़ भी लिखी है।

हर तरफ़ नूर फैल गया

कई रिवायतों में है कि रसूल (सल्ल०) की पैदाइश से पहले बीबी आमिना ने ख़ाब में देखा कि उनके अन्दर से एक नूर निकला है जिससे बहुत दूर सीरिया देश तक के महल रौशन हो गए हैं। बीबी आमिना कहती हैं कि जब आप (सल्ल०) पैदा हुए तो मुझे ऐसा मालूम हुआ कि मेरे अन्दर से एक नूर निकला जिससे पूरब और पश्चिम रौशन हो गए।

रसूल (सल्ल०) के एक प्यारे साथी हज़रत उसमान-बिन-अबी-आस (रज़ि०) की माँ जो आप (सल्ल०) की पैदाइश के वक़्त बीबी आमिना के पास थीं, कहती हैं कि जब नबी (सल्ल०) पैदा हुए तो जिधर नज़र जाती नूर-ही-नूर फैला नज़र आता।

नबी (सल्ल॰) की पैदाइश के वक़्त दाई का काम रसूल (सल्ल॰) के एक प्यारे साथी हज़रत अब्दुर्रहमान-बिन-औफ़ (रज़ि॰) की माँ हज़रत शिफ़ा-बिन्ते-औफ़ (रज़ि॰) ने किया। वे बनू-ज़ुहरा क़बीले की थीं।

अक़ीक़ा और नाम

पैदाइश के सातवें दिन अब्दुल-मुत्तलिब ने अपने प्यारे पोते का अक़ीक़ा किया और क़ुरैश के लोगों को खाने की दावत दी। उनके पूछने पर उन्होंने बताया कि मैंने अपने पोते का नाम मुहम्मद रखा है। मेरी तमन्ना है कि आसमान पर अल्लाह और ज़मीन पर अल्लाह की मख़लूक़ उसकी तारीफ़ करे।

'मुहम्मद' का मतलब है जिसकी बार-बार और बहुत ज़्यादा तारीफ़ की जाए या जिसमें सारी ख़ूबियाँ पाई जाएँ।

रसूल (सल्ल॰) की माँ ने आपका नाम अहमद रखा। जिसका मतलब है अल्लाह की बहुत तारीफ़ करनेवाला। कहा जाता है कि यह नाम नबी (सल्ल॰) की माँ ने ख़्वाब में इशारा पाकर रखा था।

रसूल (सल्ल०) का बचपन

रसूल (सल्ल०) को सबसे पहले आपकी माँ बीबी आमिना ने दूध पेलाया। तीन (3) दिन के बाद आप (सल्ल०) ने कुछ दिनों तक बीबी सुवैबा (रज़ि०) का दूध पिया। वे नबी (सल्ल०) के चचा अबू-लहब की कनीज़ (दासी) थीं।

ीबी हलीमा (रज़ि०) के पास

उस ज़माने के शहर में रहनेवाले शरीफ़ अरब घरानों में रिवाज था कि । अपने बच्चों को पैदा होते ही गाँव में भेज देते थे। वहाँ वे गाँव की औरतों का दूध पीकर परवरिश पाते। रेगिस्तान की खुली हवा में खेल-कूदकर उनकी ेहत बहुत अच्छी हो जाती और साथ ही वे बहुत अच्छी अरबी बोलना भी ीख लेते। गाँव की औरतें साल में दो बार मक्का आतीं और शरीफ़ घरानों ़ बच्चों को पालने के लिए अपने साथ ले जातीं। जब नन्हे बच्चे बड़े हो ाते तो उन्हें वापस लातीं। बच्चों के माँ-बाप उन्हें बहुत इनाम देते। इसी िवाज के मुताबिक़ नन्हे मुहम्मद (सल्ल०) को बनू-साद क़बीला की एक ुशनसीब औरत अपने क़बीले में ले गईं। उनका नाम हलीमा था और नका गाँव मक्का से बहुत दूर नज्द के इलाक़े में था।

रकत का ख़ज़ाना

गाँव की औरतें यतीम बच्चों को नहीं लिया करती थीं, लेकिन बीबी लीमा (रज़ि०) ने नन्हे रसूल (सल्ल०) को ख़ुशी से ले लिया। इस तरह उनकी क़स्मत जाग उठी, क्योंकि यह यतीम बच्चा उनके लिए बरकत का ख़ज़ाना ाकला। वे कहती हैं कि जब हम मुहम्मद (सल्ल०) को लेकर वापस जाने गे तो हमारी कम दूध देनेवाली ऊँटनी ख़ूब दूध देने लगी और हमारी रियल गधी इतनी तेज़ चली कि उसने क़ाफ़िले के तमाम गधों को पीछे छोड़ ़या। हम अपने घर पहुँचे तो कुछ ही दिनों में हमारी सूखी पड़ी ज़मीन में रेयाली छा गई और हमारी बकरियाँ ख़ूब दूध देने लगीं। इस तरह हमारी

ग़रीबी दूर हो गई। जब दो साल बीत गए तो बीबी हलीमा (रज़ि॰) नन्हे मुहम्मद (सल्ल॰) को आपकी माँ बीबी आमिना से मिलाने मक्का लाईं और फिर ज़िद करके वापस ले गईं। वे आप (सल्ल॰) से बहुत मुहब्बत करती थीं और आपको अपने बच्चों की तरह चाहती थीं। नबी (सल्ल॰) के दूध-शरीक भाई बकरियाँ चराने जाते तो आप (सल्ल॰) को भी साथ ले जाते। वे घर वापस आकर अपनी माँ को नबी (सल्ल॰) के बारे में अजीब-अजीब बातें बताते। एक दिन दौड़ते हुए घर आए और बोले कि दो आदमियों ने मुहम्मद (सल्ल॰) का पेट फाड़ दिया। बीबी हलीमा (रज़ि॰) अपने शौहर के साथ दौड़कर वहाँ गईं। नबी (सल्ल॰) वहाँ भले-चंगे खड़े थे। जब नबी (सल्ल॰) से पूछा गया कि आपको क्या हुआ था तो आप (सल्ल॰) ने बताया कि सफ़ेद कपड़ोंवाले दो आदमी आए, मुझे लिटाकर मेरा पेट फाड़ा और उसमें से कुछ निकाल कर फेंक दिया और पेट को पहले जैसा कर दिया। बीबी हलीमा (रज़ि॰) यह सुनकर घबरा गईं और मक्का जाकर आप (सल्ल॰) को बीबी आमिना के हवाले कर दिया। उस वक़्त नबी (सल्ल॰) की उम्र लगभग पाँच साल थी।

बीबी आमिना का इन्तिक़ाल

जब नबी (सल्ल॰) की उम्र लगभग छः (6) साल थी, आप (सल्ल॰) की माँ आमिना आपको साथ लेकर यसरिब गईं। वे वहाँ नबी (सल्ल॰) की परदादी (अब्दुल-मुत्तलिब की माँ) के ख़ानदान बनू-नज्जार में एक महीना रहीं। वे अपने शौहर की क़ब्र पर भी गईं और आप (सल्ल॰) को अपने वालिद की क़ब्र दिखाई। यसरिब से वापसी में रास्ते में बीमार हो गईं और अब्वा नाम के मक़ाम पर उनका इन्तिक़ाल हो गया। उसी मक़ाम पर उन्हें दफ़न किया गया। वफ़ादार कनीज़ उम्मे-ऐमन (रज़ि॰) साथ थीं। वे नबी (सल्ल॰) को साथ लेकर मक्का पहुँचीं।

दादा के पास

उम्मे-ऐमन (रज़ि॰) ने मक्का आकर नबी (सल्ल॰) को अब्दुल-मुत्तलिब के हवाले कर दिया। बूढ़े दादा ने बिना माँ-बाप के बच्चे को सीने से लगा लिया

और बड़ी मुहब्बत से आप (सल्ल॰) की परवरिश करने लगे। वे नबी (सल्ल॰) को अपने सभी बेटों से बढ़कर चाहते थे। हर वक़्त अपने साथ रखते। नबी (सल्ल॰) के बिना खाना न खाते। आपको अपनी मसनद पर बिठाते, आपका मुँह चूमते और कहते थे कि ख़ुदा की क़सम, मेरे इस बेटे की शान ही कुछ और है, यह इतने ऊँचे दर्जे पर पहुँचेगा जिसपर इससे पहले कोई अरब नहीं पहुँचा होगा। नबी (सल्ल॰) के दादा की ऐसी मुहब्बत देखकर लोग नबी (सल्ल॰) को 'इब्ने-अब्दुल-मुत्तलिब' यानी अब्दुल-मुत्तलिब का बेटा कहने लगे, लेकिन अफ़सोस! अभी आपकी उम्र आठ (8) साल ही थी कि मेहरबान दादा भी दुनिया से चल बसे।

अबू-तालिब के पास

दादा के इन्तिक़ाल के बाद नबी (सल्ल॰) के चचा अबू-तालिब ने आप (सल्ल॰) की परवरिश की। उन्होंने ने भी नबी (सल्ल॰) को बड़ी मुहब्बत से अपने पास रखा। वे अपने बच्चों से भी बढ़कर नबी (सल्ल॰) के आराम का ख़याल रखते थे। नबी (सल्ल॰) ने महसूस किया कि चचा के पास धन-दौलत की कमी है तो आप (सल्ल॰) को कमाने की फ़िक्र हुई और कुछ दिनों तक मज़दूरी पर दूसरे की बकरियाँ चराते रहे। उस ज़माने में अरब में पढ़ने-लिखने का चलन नहीं था इसलिए आप (सल्ल॰) ने भी किसी से पढ़ना-लिखना नहीं सीखा, लेकिन आप (सल्ल॰) चचा से कारोबार के तरीक़े सीखते रहे।

सीरिया (शाम) का पहला सफ़र

एक बार अबू-तालिब अपने कारोबार के सिलसिले में सीरिया जाने लगे तो नबी (सल्ल॰) को भी साथ ले लिया। उस वक़्त आप (सल्ल॰) की उम्र बारह 12) साल थी। रास्ते में बुसरा नाम के मक़ाम पर पहुँचे तो वहाँ एक ईसाई राहिब (पादरी) मिला। उसका नाम बहीरा था। उसने नबी (सल्ल॰) को देखा तो अबू-तालिब से कहने लगा कि तुम अपने भतीजे को वापस ले जाओ, कहीं ऐसा न हो कि कोई दुश्मन इनको कोई नुक़सान पहुँचाए, क्योंकि इनमें वे निशानियाँ मौजूद हैं जो आख़िरी नबी की हैं। यह सुनकर अबू-तालिब ने जल्दी-जल्दी अपना काम ख़त्म किया और नबी (सल्ल॰) को

लेकर वापस आ गए।

बुरी बातों से नफ़रत

हमारे रसूले-पाक (सल्ल॰) का बचपन इस हाल में गुज़रा कि आपके चारों तरफ़ बुराइयाँ ही बुराइयाँ फैली हुई थीं लेकिन नबी (सल्ल॰) बहुत नेक और शर्मीले थे। ज़्यादातर ख़ामोश रहते। हर तरह की बुराइयों से दूर रहते। खेल-तमाशों और मेलों-ठेलों में आप (सल्ल॰) को कोई दिलचस्पी नहीं थी। बुतों की पूजा को नबी (सल्ल॰) बहुत बुरा समझते थे और आपस की लड़ाइयों से भी दूर रहते थे। एक बार क़ुरैश और एक-दूसरे क़बीले "क़ैस-ईलान" के बीच लड़ाई छिड़ गई। उस लड़ाई को 'फ़िजार की लड़ाई' कहा जाता है। इस लड़ाई में नबी (सल्ल॰) को मजबूरन अपने चचाओं के साथ लड़ाई के मैदान में जाना पड़ा। लेकिन इस लड़ाई में आप (सल्ल॰) ने बस इतना हिस्सा लिया कि जो तीर दुश्मन की तरफ़ से आते थे उनको उठाकर अपने चचाओं को पकड़ा देते थे। नबी (सल्ल॰) के मिज़ाज में शरारत और ज़िद नाम को भी न थी।

कारोबार

सीरिया के पहले सफ़र से वापस लौटकर नबी (सल्ल॰) चचा के कारोबार में उनकी मदद करने लगे। इस तरह आप (सल्ल॰) को कारोबार करने का तरीक़ा आ गया। फिर नबी (सल्ल॰) ने रोज़ी कमाने के लिए कारोबार करने का पेशा चुना। वैसे भी क़ुरैश के शरीफ़ और इज़्ज़तदार लोग कारोबार ही करते थे।

रसूले-पाक (सल्ल॰) की जवानी

रसूले-पाक (सल्ल॰) जवान हुए तो कारोबार करने लगे। कई बार इस सिलसिले में सीरिया और यमन भी गए। आप (सल्ल॰) बात के सच्चे, वादे के पक्के, लेन-देन के खरे और नीयत के नेक थे। इसलिए आप (सल्ल॰) का कारोबार ख़ूब चमका और हर कारोबारी सफ़र में आप (सल्ल॰) को बहुत नफ़ा हुआ।

दुखियारों की मदद का समझौता

काबा की वजह से मक्का अमन का शहर था। जो लोग इस शहर में आते उनकी मेहमानदारी करना और उन्हें ख़तरों से बचाना क़ुरैश की ज़िम्मेदारी थी। लेकिन एक बार क़ुरैश के एक सरदार आस-बिन-वाइल ने एक परदेसी सौदागर से सामान ले लिया और उसका दाम न चुकाया। सौदागर पास के एक पहाड़ पर चढ़कर इस ज़ुल्म के ख़िलाफ़ दुहाई देने लगा। यह फ़रियाद सुनकर क़ुरैश के बहुत से क़बीले एक जगह जमा हुए और सबने अहद (प्रतिज्ञा) किया कि मक्का में कोई आदमी, चाहे वह शहर का हो या बाहर का, अगर दुखी और मज़लूम हुआ तो वे उसकी मदद करेंगे। फिर उन्होंने आस-बिन-वाइल से सामान लेकर उस सौदागर को वापस दे दिया। इस अहद को "हिल्फ़ुल-फ़ुज़ूल" कहा जाता है। इस अहद में रसूल (सल्ल॰) भी शामिल थे। उस वक़्त आप (सल्ल॰) की उम्र बीस (20) साल थी।

सादिक़ और अमीन

नबी (सल्ल॰) ने अपनी ज़िन्दगी के हर मामले में, घरेलू हो या कारोबारी, हमेशा सच्चाई, ईमानदारी और इनसाफ़ से काम लिया। यही वजह थी कि क़ुरैश के छोटे-बड़े सब आप (सल्ल॰) की तारीफ़ करते और आप (सल्ल॰) को सादिक़ (सच्चा) और अमीन (अमानतदार) कहकर पुकारते थे। वे आप (सल्ल॰) पर इतना भरोसा करते थे कि अपने रुपये बेझिझक कारोबार के

लिए आप (सल्ल॰) के हवाले कर देते। इसी तरह बहुत-से लोग रुपये-पैसे और ज़ेवर आप (सल्ल॰) के पास अमानत रखते थे। फिर जब वे अपनी चीज़ माँगते तो नबी (सल्ल॰) उसे ज्यों-का-त्यों वापस कर देते।

हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) से शादी

क़ुरैश के ख़ानदान बनू-असद में ख़दीजा नाम की एक बहुत नेक, समझदार और दौलतमन्द औरत थीं। उनके पहले दो शौहरों का इन्तिक़ाल हो चुका था। वे अब बेवा थीं। उनके बाप का भी इन्तिक़ाल हो चुका था। उनका बहुत बड़ा कारोबार था। वे अपना कारोबारी सामान अपने नौकरों और दूसरे लोगों को देकर सीरिया और यमन के बाज़ारों में भेजा करती थीं। उन्होंने रसूले-पाक (सल्ल॰) की सच्चाई और ईमानदारी की तारीफ़ सुनी तो आप (सल्ल॰) से कहा कि आप मेरा सामान सीरिया ले जाएँ। मैं दूसरों को जितना हिस्सा देती हूँ आपको उससे ज़्यादा दूँगी। नबी (सल्ल॰) तैयार हो गए और हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) का कारोबारी माल लेकर सीरिया गए। उनका गुलाम मैसरा भी आप (सल्ल॰) के साथ था। नबी (सल्ल॰) ने सीरिया पहुँचकर उस माल को बड़े मुनाफ़े पर बेचा। वापस आए तो हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) बहुत ख़ुश हुईं। मैसरा ने भी आप (सल्ल॰) की सच्चाई और ईमानदारी की बहुत तारीफ़ की। हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) के दिल में पहले से ही आप (सल्ल॰) के लिए बहुत इज़्ज़त थी। अब उन्होंने नबी (सल्ल॰) से निकाह का फ़ैसला कर लिया और कुछ महीने के बाद अपनी कनीज़ के ज़रिए नबी (सल्ल॰) को निकाह का पैग़ाम भेजा। उस वक़्त आप (सल्ल॰) की उम्र पच्चीस (25) साल थी और हज़रत ख़दीजा चालीस (40) साल की थीं। फिर भी आप (सल्ल॰) ने यह पैग़ाम क़बूल कर लिया। नबी (सल्ल॰) के चचा अबू-तालिब और हज़रत हमज़ा (रज़ि॰) आप (सल्ल॰) को साथ लेकर हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) के घर गए। वहाँ हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) के चचा अम्र-बिन-असद मौजूद थे। अबू-तालिब ने नबी (सल्ल॰) का निकाह हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) से पढ़ा दिया। अब दोनों मियाँ-बीवी हँसी-ख़ुशी रहने लगे और कारोबार का काम भी चलता रहा।

एक बड़े विवाद का फ़ैसला

एक बार क़ुरैश के क़बीलों में एक बड़ा विवाद उठ खड़ा हुआ और वे आपस में लड़कर कट मरने के लिए तैयार हो गए। तभी रसूल (सल्ल॰) वहाँ पहुँच गए। उस वक़्त आप (सल्ल॰) की उम्र पैंतीस (35) साल थी। आप (सल्ल॰) ने अपनी सूझ-बूझ से उस विवाद का ऐसा फ़ैसला किया कि सभी लोग खुश हो गए।

हुआ यह था कि काबा की पुरानी इमारत बार-बार बाढ़ आने से बहुत कमज़ोर हो गई थी। जब भी बारिश होती, इधर-उधर के पहाड़ों से पानी बहकर काबा में जमा हो जाता था, इसलिए क़ुरैश काबा की उस पुरानी इमारत को ढाकर उसे नए सिरे से बनाने लगे। कुछ दिनों में नई इमारत तैयार हो गई। अब 'हज्रे-असवद' को उठाकर उसकी जगह पर रखने का काम बाक़ी था। 'हज्रे-असवद' का मतलब काला पत्थर है। उस पत्थर को इबराहीम (अलैहि॰) ने अपने हाथों से काबा की दीवार में लगाया था। अरब के लोग उसे बहुत मुबारक समझते थे। मुसलमान भी उस पत्थर को बहुत पाक और मुबारक समझते हैं, काबा का हर तवाफ़ उसी से शुरू किया जाता है और उस पत्थर को चूमा भी जाता है।

हर क़बीला चाहता था कि हज्रे-असवद को उठाकर उसकी जगह पर रखने की इज़्ज़त उसे ही मिले। इसी बात पर सारे क़बीले लड़ने-मरने पर उतारू हो गए। आख़िर एक बूढ़े आदमी ने राय दी कि जो आदमी कल सुबह सबसे पहले काबा में आए वही इस झगड़े का फ़ैसला करे। सबको यह राय पसन्द आई। अल्लाह की क़ुदरत, दूसरे दिन की सुबह सबसे पहले काबा पहुँचनेवाले हमारे रसूले-पाक (सल्ल॰) थे। आप (सल्ल॰) को देखते ही सब पुकार उठे, "अमीन आ गए, अमीन आ गए।" आप (सल्ल॰) ने झगड़े का हाल सुना, फिर एक चादर मँगवाई, उस चादर में हज्रे-असवद को उठा कर रखा। फिर हर क़बीले के सरदार से कहा कि वे चादर का एक-एक कोना पकड़कर उसे उठाएँ। हर क़बीले के सरदार ने चादर पकड़कर उठाई और हज्रे-असवद दीवार के पास ले आए। अब आप (सल्ल॰) ने हज्रे-असवद को

अपने पाक हाथों से उठाकर उसकी जगह पर रख दिया। इस तरह सब ख़ुश हो गए।

हर एक के साथ भलाई

नबी (सल्ल॰) शादी के बाद कारोबार भी करते, घर के काम-काज में भी हाथ बटाते और साथ-साथ लोगों के साथ नेकी और भलाई के कामों में भी जुटे रहते। आप (सल्ल॰) ग़रीबों की मदद करते, भूखों को खाना खिलाते, बीमारों की देखभाल करते, यतीमों की परवरिश करते, बेवा और बेसहारा औरतों की मदद करते, किसी को दुखी देखते तो उसका दुख दूर करने की कोशिश करते, कोई आप (सल्ल॰) से कुछ माँगता तो आप (सल्ल॰) उसकी ज़रूरत पूरी कर देते। आप (सल्ल॰) हर एक के साथ नेकी और भलाई करते थे। इसलिए छोटे-बड़े सब आप (सल्ल॰) की इज़्ज़त करते थे।

हिरा की गुफ़ा में इबादत

अरब के लोगों की बुतपरस्ती और दूसरी बुराइयों को देख-देखकर नबी (सल्ल॰) का दिल दुखता था। आप (सल्ल॰) लोगों को सच्चाई के रास्ते पर चलाने के तरीक़े सोचा करते थे। कभी-कभी आप (सल्ल॰) बहुत अच्छे और सच्चे ख़्वाब देखते। जो कुछ आप (सल्ल॰) ख़्वाब में देखते वैसा ही मामला पेश आता। अब नबी (सल्ल॰) को अकेले रहना अच्छा लगता। उस वक़्त आप (सल्ल॰) की उम्र लगभग चालीस (40) साल थी। मक्का की आबादी से दो-तीन मील की दूरी पर पहाड़ में एक गुफ़ा है जिसे 'हिरा' कहते हैं, आप (सल्ल॰) कई-कई दिन का खाना ले लेते और हिरा की गुफ़ा में बैठकर ख़ुदा की इबादत और सोच-विचार में मशग़ूल रहते। जब खाने-पीने का सामान ख़त्म हो जाता तो घर वापस आते और कुछ पानी, सत्तू और खजूरें लेकर फिर हिरा चले जाते थे।

नुबूवत (पैग़म्बरी)

जब नबी (सल्ल॰) की उम्र लगभग चालीस (40) साल छः (6) महीने की हुई तो एक दिन आप (सल्ल॰) हिरा की गुफ़ा में इबादत कर रहे थे कि अचानक आप (सल्ल॰) को अल्लाह के फ़रिश्ते जिबरील (अलैहि॰) जो अल्लाह का कलाम और पैग़ाम लेकर पैग़म्बरों के पास आते थे, नज़र आए। उन्होंने आप (सल्ल॰) को पहली बार अल्लाह का कलाम और पैग़ाम सुनाया। अल्लाह के कलाम और पैग़ाम को 'वह्य' कहते हैं।

पहली 'वह्य' यह थी–

"पढ़ो, अपने रब के नाम के साथ जिसने सारे जहान को पैदा किया। जिसने जमे हुए ख़ून के एक लोथड़े से इनसान को बनाया। पढ़ो, तुम्हारा रब बड़ा करीम (मेहरबान) है जिसने क़लम के ज़रिए इल्म सिखाया। इनसान को वह इल्म दिया जिसे वह नहीं जानता था।" (क़ुरआन, सूरा-96 अलक़, आयतें-1-5)

इसके बाद जिबरील (अलैहि॰) चले गए।

अल्लाह का कलाम सुनकर नबी (सल्ल॰) का जिस्म काँपने लगा। उसी हाल में आप (सल्ल॰) घर आए और ख़दीजा (रज़ि॰) से फ़रमाया, "मुझे उढ़ाओ, मुझे उढ़ाओ।"

उन्होंने नबी (सल्ल॰) को कम्बल या चादर उढ़ा दी। जब थोड़ा चैन मिला तो आप (सल्ल॰) ने ख़दीजा (रज़ि॰) को सारा हाल सुनाया। फिर फ़रमाया, "मुझे अपनी जान का डर है।" ख़दीजा (रज़ि॰) ने कहा, "हरगिज़ नहीं, अल्लाह आपको कभी मुसीबत में नहीं डालेगा। आप सच बोलते हैं, रिश्तेदारों से अच्छा बरताव करते हैं, अमानतें अदा करते हैं, मेहमानों की ख़ातिरदारी करते हैं, ग़रीबों की मदद करते हैं और बेसहारा लोगों का बोझ उठाते हैं।"

फिर वह नबी (सल्ल॰) को साथ लेकर अपने चचेरे भाई वरक़ा-बिन-नौफ़ल के पास गईं। वह बहुत बूढ़े और अन्धे थे। उन्होंने बुतों की पूजा छोड़ दी

थी और ईसाई धर्म को मानने लगे थे। वे आसमानी किताबों तौरात और इन्जील के आलिम (विद्वान) थे।

वरक़ा ने नबी (सल्ल॰) से जब ये बातें सुनीं तो बोल उठे, "यह खुदा का वही फ़रिश्ता है जो मूसा (अलैहि॰) के पास आता था। ऐ काश! मैं उस वक़्त ज़िन्दा होता जब आप (सल्ल॰) की क़ौम आपको घर से निकाल देगी।"

आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "क्या ये लोग मुझे निकाल देंगे।" वरक़ा ने कहा, "हाँ, आप जो पैग़ाम लेकर आए हैं, उसको लेकर जो भी आया, उसकी क़ौम ने उसके साथ दुश्मनी की। अगर मैंने आपका वह ज़माना पाया तो मैं आप की पूरी मदद करूँगा।" मगर इसके कुछ ही दिनों के बाद वरक़ा का इन्तिक़ाल हो गया।

पहली 'वह्य' (खुदाई पैग़ाम) के बाद एक मुद्दत तक हज़रत जिबरील (अलैहि॰) कोई और वह्य न लाए। वह्य के रुक जाने से आप (सल्ल॰) बहुत दुखी हुए। जब आप (सल्ल॰) दुख से निढाल हो जाते तो जिबरील (अलैहि॰) आप (सल्ल॰) के सामने आते और कहते—"बेशक, आप अल्लाह के रसूल हैं और मैं जिबरील हूँ।"

फिर एक दिन जिबरील (अलैहि॰) यह वह्य लेकर आए—

"ऐ ओढ़ लपेटकर लेटनेवाले! उठो, और लोगों को ख़बरदार करो। और अपने रब की बड़ाई का ऐलान करो। और अपने कपड़े पाक रखो। और गन्दगी से दूर रहो। और ज़्यादा हासिल करने के लिए एहसान न करो। और अपने रब की ख़ातिर सब्र करो।"

(क़ुरआन, सूरा-74 मुद्दस्सिर, आयतें-1-7)

अब नबी (सल्ल॰) जान गए कि अल्लाह ने मुझे अपना नबी और रसूल बनाया है तो इस हैसियत से मेरी ज़िम्मेदारी है कि मैं लोगों को इस्लाम की तरफ़ बुलाऊँ।

इस्लाम की दावत

दूसरी वह्य आने के बाद नबी (सल्ल॰) ने लोगों को इस्लाम की तरफ़ बुलाना शुरू कर दिया। आप (सल्ल॰) ने लोगों को बताया कि—

1. अल्लाह एक है। उसका कोई साझी नहीं। उसकी न कोई औलाद है, न बीवी, न माँ-बाप। कोई उसके बराबर नहीं। ज़मीन, आसमान, सूरज, चाँद, सितारे सब कुछ उसी ने बनाया है। फल, फूल, पेड़, अनाज वही उगाता है। सुख-दुख, ज़िन्दगी और मौत वही देता है। उसके सिवा कोई इबादत के लायक़ नहीं।
2. फ़रिश्ते अल्लाह की एक ऐसी मख़लूक़ (रचना) हैं जो हमें दिखाई नहीं देती। वे दिन-रात अल्लाह की इबादत में और उसके हुक्मों को पूरा करने में लगे रहते हैं। उनपर ईमान लाना ज़रूरी है।
3. दुनिया में जितने रसूल और नबी आए हैं वे सब सच्चे और ख़ुदा के भेजे हुए हैं। उन सबपर ईमान लाना ज़रूरी है। मैं भी अल्लाह का नबी और रसूल हूँ इसलिए मुझपर भी ईमान लाओ।
4. अल्लाह ने अपने रसूलों को जो किताबें दी हैं वे सब सच्ची हैं।
5. हर आदमी मरने के बाद क़ियामत के दिन फिर ज़िन्दा होगा और ख़ुदा के सामने हाज़िर किया जाएगा। ख़ुदा हर एक को उसके अच्छे और बुरे कामों का बदला देगा।

औरतों में सबसे पहले हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) ने इस्लाम क़बूल किया। मर्दों में नबी (सल्ल॰) के साथी हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) और आप (सल्ल॰) के आज़ाद किए हुए गुलाम हज़रत ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि॰) सबसे पहले ईमान लाए। इसी तरह लड़कों में सबसे पहले आप (सल्ल॰) के चचेरे भाई हज़रत अली (रज़ि॰) ने इस्लाम क़बूल किया। इसके बाद आप (सल्ल॰) चुपके-चुपके मक्का के नेक और समझदार लोगों को इस्लाम की बातें समझाने लगे। धीरे-धीरे लोग इस्लाम क़बूल करने लगे। इनमें क़ुरैश के बड़े घरानों के लोग भी थे और ग़रीब लोग भी।

लगभग ढाई साल इसी तरह गुज़र गए। फिर नबी (सल्ल॰) को ख़बर मिली कि क़ुरैश के कुछ बुरे लोगों को आप (सल्ल॰) के मिशन का पता चल गया है और वे मुसलमानों को नुक़सान पहुँचाने की ताक में हैं। यह ख़बर पाकर आप (सल्ल॰) सफ़ा की पहाड़ी के पास एक सुरक्षित मकान में चले गए। उस मकान के मालिक एक नेक-दिल मुसलमान अरक़म-बिन-अबी-अरक़म (रज़ि॰) थे। सारे मुसलमान उसी मकान में जमा होकर नमाज़ पढ़ते और जो लोग इस्लाम क़बूल करना चाहते वे वहाँ जाकर आप (सल्ल॰) से मिलते और मुसलमान हो जाते। इसी तरह तीन साल गुज़र गए। इस मुद्दत में एक सौ तैंतीस (133) नेक लोगों ने इस्लाम क़बूल किया। उनमें सौ (100) से कुछ ज़्यादा मर्द थे और बाक़ी औरतें थीं।

इस्लाम की खुली दावत

नुबूवत के चौथे साल के शुरू में रसूल (सल्ल॰) को अल्लाह का हुक्म हुआ कि अब इस्लाम का पैग़ाम लोगों तक खुलकर पहुँचाना है और इस्लाम-दुश्मनों की मुख़ालफ़त (विरोध) की कोई परवाह नहीं करनी है।

यह हुक्म मिलते ही नबी (सल्ल॰) काबा में सबके सामने नमाज़ पढ़ने लगे। फिर आप (सल्ल॰) ने अपने क़रीबी रिश्तेदारों को दो बार खाने पर बुलाया और उन्हें इस्लाम की दावत दी। लेकिन दोनों बार आप (सल्ल॰) के एक चचा अबू-लहब ने आपका कड़ा विरोध किया। वह बड़ा कट्टर इस्लाम-विरोधी था और अपने बुतों की बुराई नहीं सुन सकता था। दूसरे रिश्तेदार भी उसकी बातों में आ गए और खाना खाकर चुपचाप चले गए। लेकिन नबी (सल्ल॰) के चचा अबू-तालिब ने कहा कि मैं दुश्मनों के मुक़ाबले में तुम्हारी मदद करूँगा, तुम अपना काम जारी रखो। अबू-तालिब के कमसिन बेटे हज़रत अली (रज़ि॰) ने भी कहा कि मैं आप (सल्ल॰) का साथ दूँगा।

पहाड़ी से आवाज़ दी

इसके बाद एक दिन नबी (सल्ल॰) मक्का के एक क़रीबी पहाड़ी सफ़ा पर चढ़ गए और उसकी चोटी पर खड़े होकर क़ुरैश के एक-एक क़बीले का नाम लेकर पुकारा। जब सब लोग जमा हो गए तो आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "अगर मैं तुमसे कहूँ कि इस पहाड़ के पीछे दुश्मन की एक फ़ौज तुमपर चढ़ाई करने आ रही है तो क्या तुम यक़ीन कर लोगे?"

सबने कहा, "हाँ, हम ज़रूर यक़ीन करेंगे, क्योंकि हमने तुमको हमेशा सच बोलते देखा है।"

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "फिर सुनो, बुतों की पूजा करना बहुत बड़ा गुनाह है, उसे छोड़ दो और एक ख़ुदा पर ईमान लाओ, अगर तुमने ऐसा न किया तो तुमपर बड़ा भारी अज़ाब आएगा।"

यह सुनकर अबू-लहब कहने लगा, "तेरा बुरा हो, क्या तूने इसी लिए

हमें यहाँ बुलाया था?" यह कहकर वह वहाँ से चल दिया। दूसरे लोग भी नाराज़ होकर वहाँ से चले गए। आप (सल्ल०) ने उन लोगों के नाराज़गी की कोई परवाह नहीं की और बुतपरस्ती की बुराई को खुलकर बयान करते रहे और लोगों को इस्लाम की तरफ़ बुलाते रहे।

क़ुरैश की मुख़ालफ़त

क़ुरैश के इस्लाम-दुश्मनों ने जब यह देखा कि रसूल (सल्ल॰) रात-दिन लोगों को इस्लाम की दावत देने में लगे हैं और आप (सल्ल॰) का पैग़ाम लोगों के दिलों में उतरता जा रहा है, तो वे आप (सल्ल॰) के कट्टर दुश्मन बन गए। आप (सल्ल॰) को तरह-तरह से सताने लगे। दूसरे मुसलमानों पर भी बड़े-बड़े ज़ुल्म ढ़ाने लगे। इन ज़ालिम लोगों में क़ुरैश के बड़े-बड़े सरदार अबू-जह्ल, अबू-लहब, आस-बिन-वाइल, उक़्बा-बिन-अबी-मुईत, वलीद-बिन-मुग़ीरा, नज़्र-बिन-हारिस, उमैया-बिन-ख़लफ़, उबई-बिन-ख़लफ़, आस-बिन-सईद और असवद-बिन-अब्दे-यग़ूस और दूसरे लोग शामिल थे। ये लोग नबी (सल्ल॰) को सताने और दुख देने के लिए बड़े घटिया काम करते। आप (सल्ल॰) क़ुरआन पढ़ते तो वे सब हंगामा करते और तालियाँ बजाते। आप (सल्ल॰) के रास्ते में काँटे बिछा देते। आप (सल्ल॰) पर धूल-मिट्टी फेंकते। आप (सल्ल॰) को दीवाना, शायर और जादूगर कहते। आप (सल्ल॰) काबा जाते तो उल्टी-सीधी बातें सुनाते और धक्के देते। बाहर से मक्का आनेवालों से कहते कि हमारे यहाँ एक आदमी बाप-दादा के दीन को छोड़ बैठा है, उससे न मिलना। आप (सल्ल॰) उनकी नीच हरकतों पर सब्र करते थे और अपने काम में लगे रहते थे। अब क़ुरैश ने आप (सल्ल॰) के चचा अबू-तालिब पर दबाव डालने की कोशिश की। उनमें से कुछ आदमी इकट्ठे होकर तीन-चार बार अबू-तालिब के पास गए और उनसे कहा कि आप मुहम्मद (सल्ल॰) का साथ देना छोड़ दें। अबू-तालिब ने हर बार उनको टाल दिया, लेकिन एक दिन उन्होंने नबी (सल्ल॰) से कहा, "भतीजे, मुझ बूढ़े पर इतना बोझ न डालो कि मैं उठा न सकूँ।" मेहरबान चचा की यह बात सुनकर आप (सल्ल॰) की आँखों में आँसू आ गए और फ़रमाया—

> "चचा जान, ख़ुदा की क़सम अगर वे लोग मेरे एक हाथ पर सूरज और दूसरे हाथ पर चाँद रख दें तब भी मैं लोगों को इस्लाम की तरफ़ बुलाना न छोड़ूँगा।"

अबू-तालिब ने आप (सल्ल॰) का हौसला और पक्का इरादा देखकर कहा, "अच्छा भतीजे, जाओ और अपना काम करते रहो, मैं तुम्हारी मदद करता रहूँगा।"

क़ुरैश को अब रसूल (सल्ल॰) को लालच में डालने की एक चाल सूझी। उनके कुछ सरदार दो-तीन बार आप (सल्ल॰) के पास यह पैग़ाम लेकर आए कि अगर आप बादशाह बनना चाहते हैं तो हम आपको अपना बादशाह बना लेंगे। अगर आप दौलत चाहते हैं तो हम आपको इतना माल दे देंगे कि आप मक्का के सबसे दौलतमन्द आदमी बन जाएँ। अगर आप शादी करना चाहते हैं तो मक्का की जिस औरत से आप चाहें हम आपकी शादी करा देंगे। बस आप हमारी इतनी बात मान लें कि हमारे बुतों को बुरा न कहें।

नबी (सल्ल॰) ने उन लोगों की कोई बात क़बूल नहीं की और फ़रमाया—

> "मैं जो पैग़ाम तुम्हारे पास लाया हूँ, उसे मान लो, उसी में तुम्हारी भलाई है, नहीं तो मेरे और तुम्हारे बीच का फ़ैसला अल्लाह करेगा।"

क़ुरैश के इस्लाम-दुश्मनों ने नबी (सल्ल॰) को तरह-तरह की धमकियाँ दीं लेकिन आप (सल्ल॰) ने किसी धमकी की परवाह नहीं की और अपने काम में लगे रहे ।

अरब में हर साल 'उकाज़' और 'मजन्ना' वग़ैरा मक़ाम पर बड़े-बड़े मेले लगते थे, जिनमें दूर-दूर से लोग आया करते थे। नबी (सल्ल॰) उन मेलों में जाते और लोगों को इस्लाम की तरफ़ बुलाते। इसी तरह हज के दिनों में अरब के हर कोने से लोग मक्का आते। उनका पड़ाव मिना में होता। आप (सल्ल॰) आनेवाले हर एक क़बीले के पास जाते और सबको इस्लाम की दावत देते ।

मुसलमानों पर ज़ुल्म व सितम

मक्का के इस्लाम-दुश्मन एक तरफ़ रसूल (सल्ल॰) को सताते थे और दूसरी तरफ़ मुसलमानों में जिनपर उनका ज़ोर चलता उनपर ऐसे-ऐसे ज़ुल्म ढाते कि उनका हाल पढ़कर हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। वे बहादुर मुसलमान हर तरह की मुसीबतें और दुख झेल जाते थे मगर इस्लाम से मुँह न मोड़ते थे। ज़ालिम लोग–

- इस्लाम लाने की सज़ा में हज़रत बिलाल (रज़ि॰) को तेज़ धूप में तपती रेत पर लिटाते थे और उनके गले में रस्सी बाँधकर गलियों में घसीटते थे ।
- हज़रत ख़ब्बाब (रज़ि॰) को दहकते हुए कोयलों पर लिटाते थे और गर्म लोहा उनके जिस्म पर लगाते थे ।
- हज़रत यासिर (रज़ि॰), उनकी बीवी सुमैया (रज़ि॰) और बेटे अम्मार (रज़ि॰) को इतना मारते थे कि वे बेहोश हो जाते। बूढ़े यासिर (रज़ि॰) का तो यह ज़ुल्म सहते-सहते इन्तिक़ाल हो गया और हज़रत सुमैया (रज़ि॰) को अबू-जहल ने बरछी मारकर शहीद कर दिया। हज़रत अम्मार (रज़ि॰) को ज़ालिम कभी आग पर लिटाते और कभी उन्हें पानी में देर तक डुबकियाँ देते रहते ।
- हज़रत सुहैब (रज़ि॰) को इतना मारते थे कि वे बेहोश हो जाते थे ।
- हज़रत ज़िन्नीरा (रज़ि॰) एक मुसलमान कनीज़ (दासी) थीं। एक दिन अबू-जहल ने उनको इतना मारा कि उनकी आँखों की रौशनी चली गई।
- हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) को मुशरिकों ने इतना मारा कि वे लहूलुहान हो गए और उनका सारा मुँह सूज गया।
- हज़रत उसमान (रज़ि॰) ईमान लाए तो उनके चचा ने उन्हें रस्सियों से बाँधकर मारा।
- हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-मसऊद (रज़ि॰) ने इस्लाम-दुश्मनों के सामने क़ुरआन पढ़ा तो उन्होंने उनको बुरी तरह मारा ।

- हज़रत ख़ालिद-बिन-सईद (रज़ि॰) के इस्लाम लाने का हाल उनके वालिद को मालूम हुआ तो उन्होंने एक लकड़ी से उन्हें इतना मारा कि लकड़ी टूट गई, फिर उन्हें क़ैद कर दिया और भूखा-प्यासा रखा।
- हज़रत ज़ुबैर (रज़ि॰) के चचा उनको चटाई में लपेटकर बाँध देते और इतना धुआँ देता कि हज़रत ज़ुबैर (रज़ि॰) का दम घुटने लगता।
- हज़रत तलहा (रज़ि॰) के भाई ने उनको हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) के साथ एक रस्सी में बाँधकर बुरी तरह मारा ।
- हज़रत हारिस-बिन-अबी-हाला (रज़ि॰) ने एक दिन काबा में रसूल (सल्ल॰) का साथ दिया तो इस्लाम-दुश्मनों ने उन्हें इतना मारा कि वे शहीद हो गए।
- हज़रत आमिर-बिन-फ़ुहैरा (रज़ि॰) के साथ हर दिन मार-पीट होती और उनके जिस्म में काँटे चुभाए जाते थे।
- हज़रत अबू-फ़ुकैहा (रज़ि॰) एक बूढ़े मुसलमान थे। वे उनके हाँथ-पाँव बाँधकर पथरीली ज़मीन पर घसीटते और गला घोंटते थे।
- हज़रत अबू-जन्दल (रज़ि॰) इस्लाम लाए तो उनके वालिद ने उनके पाँव में बेड़ियाँ डालकर क़ैद कर दिया।

इसी तरह बेरहम इस्लाम-दुश्मन दिन-रात मुसलमानों पर ज़ुल्म ढाते रहते थे।

हबशा की हिजरत

एक देश या शहर छोड़कर दूसरे देश या शहर में जा बसने को हिजरत कहते हैं। जब मक्का में मुसलमानों पर इस्लाम-दुश्मनों का ज़ुल्म बहुत बढ़ गया तो रसूल (सल्ल०) ने मुसलमानों से फ़रमाया, "तुम यहाँ से निकलकर हबशा चले जाओ, वहाँ का बादशाह किसी पर ज़ुल्म नहीं होने देता। जब तक हालात अच्छे न हो जाएँ वहीं रुके रहो।"

हबशा लाल सागर के पश्चिमी किनारे पर अफ़्रीक़ा में स्थित है। आजकल उसे इथोपिया कहते हैं। उस ज़माने में वहाँ के बादशाह को नज्जाशी कहा जाता था। नबी (सल्ल०) का हुक्म सुनकर बहुत-से लोग हबशा जाने के लिए तैयार हो गए और उसी साल ग्यारह (11) मर्दों और चार (4) औरतों का एक क़ाफ़िला हिजरत करके हबशा चला गया। उनमें से एक-दो के सिवा सारे लोग यह ख़बर सुनकर बहुत जल्द वापस आ गए कि मक्का के लोग मुसलमान हो गए हैं। लेकिन मक्का पहुँचकर पता चला कि यह ख़बर ग़लत थी। अब इस्लाम-दुश्मन मुसलमानों पर और ज़्यादा ज़ुल्म ढाने लगे। नुबूवत के छठे साल में एक सौ तीन (103) मुसलमान आप (सल्ल०) की इजाज़त से हिजरत करके हबशा चले गए। उनमें पचासी (85) या छियासी (86) मर्द थे, बाक़ी सब औरतें थीं। वहाँ के बादशाह नज्जाशी ने उनसे बहुत अच्छा बर्ताव किया और वे वहाँ सुख-शान्ति से रहने लगे। क़ुरैश को पता चला तो वे ग़ुस्से में भड़क उठे। उन्होंने बहुत-से तोहफ़े (उपहार) देकर अपने दो एलची (दूत) नज्जाशी के पास भेजे। उन्होंने नज्जाशी से दरख़ास्त की कि ये लोग हमारे मुजरिम हैं इसलिए आप इन्हें देश से निकाल दें, बादशाह ने मुसलमानों को बुलाकर उनसे पूछा कि "तुमने कौन-सा नया दीन (धर्म) अपना लिया है?" मुसलमानों की तरफ़ से रसूल (सल्ल०) के चचेरे भाई हज़रत जाफ़र-बिन-अबी- तालिब (रज़ि०) ने जवाब में तक़रीर की—

"ऐ बादशाह, हम जाहिल थे, बुतों की पूजा करते थे, हराम चीज़ें खाते थे, बेहयाई के काम करते थे, पड़ोसियों को सताते थे,

ताक़तवर कमज़ोरों पर ज़ुल्म करता था। अल्लाह ने हममें से हमारी तरफ़ एक रसूल भेजा। हम उसके ख़ानदान की बड़ाई और उसकी सच्चाई, ईमानदारी और पाकबाज़ी को जानते थे। उसने हमें अल्लाह के सच्चे दीन की तरफ़ बुलाया। उसने हमें नसीहत की कि हम बुतों की पूजा छोड़ दें, किसी पर ज़ुल्म न करें, यतीमों का माल न खाएँ, सच बोलें, पड़ोसियों से अच्छा बर्ताव करें, नमाज़ पढ़ें, रोज़े रखें, ज़कात दें। हम उसपर ईमान लाए तो हमारी क़ौम हमारी दुश्मन बन गई। हमने अपने दीन (धर्म) को बचाने के लिए आपके देश में पनाह ली है।"

नज्जाशी ने कहा, "तुम्हारे पैग़म्बर पर जो कलाम उतारा गया है उसमें से कुछ सुनाओ।"

हज़रत जाफ़र (रज़ि॰) ने सूरा मरयम की कुछ आयतें पढ़कर सुनाईं तो बादशाह की आँखों में आँसू आ गए और उसने कहा, "ख़ुदा की क़सम यह कलाम और इन्जील एक ही नूर से हैं।" फिर बादशाह ने क़ुरैश के लोगों से कहा, "तुम वापस जाओ, मैं इन लोगों को तुम्हारे हवाले नहीं करूँगा।"

दूसरे दिन क़ुरैश के वे दूत बादशाह को यह कहकर भड़काने लगे कि ये मुसलमान हज़रत ईसा (अलैहि॰) के बारे में अच्छी सोच नहीं रखते। लेकिन जब मुसलमानों ने बादशाह को बताया कि हम हज़रत ईसा (अलैहि॰) को अल्लाह का बन्दा, सच्चा पैग़म्बर और अल्लाह की रूह मानते हैं तो बादशाह कहने लगा कि हज़रत ईसा (अलैहि॰) का यही रुतबा था। फिर उसने क़ुरैश के एलचियों के तोहफ़े उन्हें लौटा दिए और उन्हें वापस भेज दिया। कुछ मुद्दत के बाद नेक बादशाह ने हज़रत जाफ़र (रज़ि॰) के हाथ पर इस्लाम क़बूल कर लिया।

हज़रत हमज़ा (रज़ि०) और हज़रत उमर (रज़ि०) इस्लाम की आग़ोश में

नुबूवत के छठे साल में क़ुरैश के दो बड़े इज़्ज़तदार और बहादुर आदमी ईमान ले आए। वे थे हज़रत हमज़ा (रज़ि०) और हज़रत उमर-बिन-ख़त्ताब (रज़ि०)।

हज़रत हमज़ा (रज़ि०) रसूल (सल्ल०) के चचा भी थे और मौसेरे (ख़ालाज़ाद) भाई भी। इसके साथ-साथ वे आप (सल्ल०) के दूध-शरीक भाई भी थे क्योंकि बचपन में हज़रत हमज़ा (रज़ि०) ने हज़रत सुवैबा (रज़ि०) का दूध पिया था, फिर नबी (सल्ल०) ने भी बाद में हज़रत सुवैबा का दूध पिया। वे आप (सल्ल०) से सिर्फ़ दो साल बड़े थे। रसूल (सल्ल०) से उनको बहुत मुहब्बत थी। लेकिन जब आप (सल्ल०) ने लोगों को इस्लाम की तरफ़ बुलाना शुरू किया तो काफ़ी दिनों तक उन्होंने इसपर ध्यान नहीं दिया। उन्हें तलवार और तीर चलाने और पहलवानी करने में बड़ी दिलचस्पी थी। वे अपना ज़्यादा वक़्त सैर-सपाटा करने और शिकार खेलने में बिताया करते थे। एक दिन शिकार से वापस आ रहे थे कि एक कनीज़ (दासी) ने उन्हें बताया कि आज अबू-जह्ल ने मुहम्मद (सल्ल०) को बहुत गालियाँ दी हैं। यह सुनकर उन्हें बड़ा गुस्सा आया। वे तुरन्त काबा में पहुँचे जहाँ अबू-जह्ल इस्लाम-दुश्मनों के साथ बैठा बातें बना रहा था। उन्होंने अपनी कमान उसके सिर पर इतने ज़ोर से मारी कि वह घायल हो गया। इसके साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि मेरा दीन भी मुहम्मद (सल्ल०) का दीन है, अगर तुम सच्चे हो तो मुझे इससे रोककर देखो—फिर वे घर गए और रात भर सोचते रहे। जब सवेरा हुआ तो नबी (सल्ल०) के पास हाज़िर हुए और अपने इस्लाम लाने का एलान कर दिया।

इस घटना के तीन (3) दिन बाद क़ुरैश के दूसरे मशहूर बहादुर हज़रत उमर (रज़ि०) तलवार हाथ में लेकर रसूल (सल्ल०) को शहीद करने के इरादे

से निकले। रास्ते में उनके क़बीले बनू-अदी के एक मुसलमान हज़रत नुऐम (रज़ि॰) मिल गए। उन्होंने हज़रत उमर (रज़ि॰) से कहा कि अगर तुमने ऐसा किया तो अब्दे-मनाफ़ की औलाद तुम्हें ज़िन्दा नहीं रहने देगी। तुम्हारी अपनी बहन फ़ातिमा (रज़ि॰) और बहनोई सईद-बिन-ज़ैद (रज़ि॰) भी मुसलमान हो गए हैं। यह सुनकर हज़रत उमर (रज़ि॰) बहन के घर पहुँचे। अन्दर से क़ुरआन पढ़ने की आवाज़ आ रही थी। उन्होंने दरवाज़ा खटखटाया तो बहन ने क़ुरआन के पन्ने छुपा दिए और दरवाज़ा खोला। हज़रत उमर (रज़ि॰) ने अन्दर आते ही बहनोई को मारना शुरू कर दिया। बहन अपने शौहर को बचाने आईं तो उन्हें भी लहूलुहान कर दिया। उन्होंने कहा, "उमर, जो दिल चाहे कर डालो, अब इस्लाम हमारे दिल से नहीं निकल सकता।" इस बात ने हज़रत उमर (रज़ि॰) के दिल पर गहरा असर डाला। उन्होंने बहन से कहा, "अच्छा, तुम लोग जो पढ़ रहे थे वह मुझे भी सुनाओ।" उन्होंने छिपाए हुए पन्ने निकाले और उनपर लिखी हुई सूरा 'ताहा' पढ़ी। (कुछ किताबों में लिखा है कि यह सूरा 'हदीद' थी।) यह सूरा हज़रत उमर (रज़ि॰) ने नहा-धोकर खुद क़ुरआन के पन्ने हाथ में लेकर पढ़ी। कुछ ही आयतें पढ़ने या सुनने से उनका दिल पिघल गया और वे इस्लाम में दाख़िल हो गए।

रसूल (सल्ल॰) उस वक़्त कुछ मुसलमानों के साथ हज़रत अबू-अरक़म (रज़ि॰) के घर में थे। हज़रत उमर (रज़ि॰) सीधे उधर ही चल पड़े। मुसलमानों ने दरवाज़े की दरार से हज़रत उमर (रज़ि॰) को आते हुए देखा तो उन्हें ख़तरा महसूस हुआ। लेकिन हज़रत हमज़ा (रज़ि॰) ने बेधड़क कहा, "उसे आने दो, अच्छे इरादे से आया है तो ठीक है, नहीं तो उसी की तलवार से उसका सिर उड़ा दूँगा।" दरवाज़ा खुला और हज़रत उमर (रज़ि॰) अन्दर आए। आप (सल्ल॰) ने उनकी चादर को पकड़कर पूछा, "इब्ने-ख़त्ताब, किस इरादे से आए हो ?"

उन्होंने कहा, "अल्लाह और उसके रसूल (सल्ल॰) पर ईमान लाने के लिए।" इसपर आप (सल्ल॰) ने ज़ोर से अल्लाहु-अकबर फ़रमाया।

नबी (सल्ल॰) ने एक दिन पहले ही यह दुआ माँगी थी कि "ऐ अल्लाह,

अबू-जह्ल या उमर-बिन-ख़त्ताब को मुसलमान बना दे।" यह दुआ हज़रत उमर (रज़ि॰) के हक़ में क़बूल हो गई।

मुसलमान होने के बाद हज़रत उमर (रज़ि॰) सभी मुसलमानों के साथ बाहर निकले और इस्लाम-दुश्मनों को पीछे हटाकर काबा के आँगन में नमाज़ पढ़ी। उससे पहले मुसलमान छुप-छुपाकर नमाज़ पढ़ा करते थे।

पहाड़ के दर्रे में तीन साल

क़ुरैश ने जब यह देखा कि इस्लाम फैलता ही जा रहा है तो नुबूवत के सातवें साल में उन सबने मिलकर फ़ैसला किया कि जब तक अबू-तालिब रसूल (सल्ल॰) को उनके हवाले नहीं करेंगे कोई आदमी रसूल (सल्ल॰) के ख़ानदान बनू-हाशिम से कोई ताल्लुक़ नहीं रखेगा। न उनसे शादी-ब्याह करेगा, न उन्हें खाने-पीने का कोई सामान देगा और न उनसे किसी तरह का लेन-देन करेगा। उन्होंने आपस में किए गए इस मुआहिदे (अनुबन्ध) को लिखकर काबा के दरवाज़े पर लटका दिया। अबू-तालिब को पता चला तो वे अबू-लहब और उसके घरवालों के सिवा ख़ानदान के सभी लोगों को लेकर पहाड़ के एक दर्रे में चले गए। वह दर्रा शेबे-अबी-तालिब कहलाता था। बनू-हाशिम ने भी उनका साथ दिया। मुसलमान पूरे तीन (3) साल उस दर्रे में बड़ी तकलीफ़ से गुज़र-बसर करते रहे। यह ज़माना इतना सख़्त था कि वे पेड़ के पत्ते खाने पर मजबूर थे। बच्चे भूख-प्यास से तड़पते थे। उनकी माँओं का दूध सूख गया था और वे सूखकर काँटा बन गई थीं। आख़िर दुश्मनों में से कुछ को दया आ गई और उन्होंने काबा पर लटके हुए मुआहिदे (अनुबन्ध) को फाड़ डाला। मुसलमान नुबूवत के दसवें साल दर्रे से निकलकर शहर में आ गए।

ग़म का साल

दर्रे से निकलने के बाद थोड़े ही दिन गुज़रे थे कि रसूल (सल्ल॰) के प्यारे चचा अबू-तालिब चल बसे। अभी यह दुख ताज़ा ही था कि हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) का भी इन्तिक़ाल हो गया। वे दोनों आप (सल्ल॰) के मददगार और हर मुसीबत के साथी थे। इसलिए उनके इन्तिक़ाल से नबी (सल्ल॰) को गहरा सदमा पहुँचा। आप (सल्ल॰) नुबूवत के दसवें साल को "आमुल-हुज़्न" यानी ग़म का साल कहा करते थे।

इस्लाम-दुश्मनों का ज़ुल्म और बढ़ गया

अबू-तालिब और हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) के इन्तिक़ाल के बाद इस्लाम-दुश्मन नबी (सल्ल॰) को पहले से बढ़कर सताने लगे। एक दिन जब आप (सल्ल॰) काबा के पास नमाज़ पढ़ रहे थे, एक शरारती शख़्स ने ऊँट की भारी ओझड़ी लाकर आप (सल्ल॰) की पीठ पर डाल दी। नबी (सल्ल॰) की बेटी हज़रत फ़ातिमा (रज़ि॰) को मालूम हुआ तो उन्होंने आकर बड़ी मुश्किल से उसे हटाया।

एक दिन किसी ज़ालिम ने नबी (सल्ल॰) के सिर पर धूल-मिट्टी डाल दी। आप (सल्ल॰) उसी हालत में घर आए। आप (सल्ल॰) की एक बेटी ने रोते-रोते आप (सल्ल॰) का सिर धोया। एक दिन एक ज़ालिम ने बाज़ार में सब लोगों के सामने नबी (सल्ल॰) को गालियाँ दीं।

एक बार एक ज़ालिम ने नबी (सल्ल॰) की गर्दन में चादर का फन्दा डाल दिया और गला घोंटने की कोशिश की। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) को पता चला तो वे दौड़कर आए और आप (सल्ल॰) की गर्दन फन्दे से निकाली।

ताइफ़ का सफ़र

उसी साल नबी (सल्ल॰) अपने मुँह-बोले बेटे हज़रत ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि॰) को साथ लेकर ताइफ़ गए ताकि वहाँ के सरदारों को इस्लाम की दावत दें। यह मक्का से पचास-साठ मील दूर एक हरा-भरा और ख़ुशहाल शहर था। ताइफ़ के सरदारों ने इस्लाम क़बूल करने से इनकार कर दिया।

बल्कि आप (सल्ल॰) की हँसी उड़ाई। दुष्ट शरारती आवारा लड़कों को आप (सल्ल॰) के पीछे लगा दिया। उन्होंने आप (सल्ल॰) को पत्थर मार-मारकर घायल कर दिया, यहाँ तक कि आप (सल्ल॰) ने शहर के बाहर एक बाग़ में पनाह ली। ताइफ़वालों के इस बुरे बरताव पर भी आप (सल्ल॰) ने उनके लिए कोई बद्दुआ नहीं की, बल्कि फ़रमाया कि उम्मीद है उनकी औलाद ज़रूर अल्लाह का दीन क़बूल करेगी।

क़बीलों से मुलाक़ात

ताइफ़ से मक्का वापसी के बाद नबी (सल्ल॰) ने तय किया कि हज पर आनेवाले क़बीलों को पहले की तरह ही इस्लाम का पैग़ाम सुनाया जाए और साथ में उनके सरदारों को क़ुरैश के मुक़ाबले में अपनी मदद और हिमायत के लिए उभारा जाए। इस फ़ैसले के बाद आप (सल्ल॰) एक-एक क़बीले के पास जाते, इस्लाम की दावत देते और अपनी हिमायत के लिए कहते। उनमें कुछ तो नर्मी से इनकार कर देते और कुछ बुरे बरताव से पेश आते।

मददगार मिल गए

नुबूवत का ग्यारहवाँ साल था। हज का मौक़ा था। नबी (सल्ल॰) अलग-अलग क़बीलों को अल्लाह के दीन की दावत दे रहे थे। यहाँ तक कि आप (सल्ल॰) मिना की तरफ़ निकल पड़े। वहाँ अक़बा की घाटी में आप (सल्ल॰) की मुलाक़ात यसरिब के रहनेवाले छः (6) लोगों से हुई। यसरिब मक्का से लगभग तीन सौ (300) मील दूर है। उसी शहर का नाम मदीना मुनव्वरा है। उस ज़माने में यसरिब में दो बड़े क़बीले औस और ख़ज़रज आबाद थे। वे लोग खेती-बाड़ी करते और खजूर के बाग़ लगाया करते थे। उनके पास-पड़ोस में यहूदी बसते थे जो उन्हें सूद पर क़र्ज़ दिया करते थे। इन क़बीलों की आपस में झड़पें होती रहती थीं। यसरिब में यहूदियों का सिक्का चलता था। औस और ख़ज़रज के लोग बुतों की पूजा करते थे। यहूदी उनसे अकसर एक आख़िरी नबी के आने की चर्चा करते रहते थे। अक़बा की घाटी में नबी (सल्ल॰) जिन छः (6) आदमियों से मिले उनका ताल्लुक़ ख़ज़रज क़बीले से था। जब आप (सल्ल॰) ने उन्हें अल्लाह का

पैग़ाम सुनाया तो उनके दिल ने गवाही दी कि आप (सल्ल॰) ही अल्लाह के आख़िरी नबी हैं। उन्होंने तुरन्त इस्लाम क़बूल कर लिया और आप (सल्ल॰) के हाथों पर 'बैअत' कर ली। 'बैअत' का मतलब है फ़रमाँबरदारी का अहद करना।

अगले साल यसरिब से बारह (12) आदमी आकर मुसलमान हुए और अक़बा की घाटी ही में नबी (सल्ल॰) से बैअत की। आप (सल्ल॰) ने उन लोगों की ख़ाहिश पर अपने एक साथी मुसअब-बिन-उमैर (रज़ि॰) को यसरिब भेजा ताकि वे उन्हें अल्लाह के दीन की बातें सिखाएँ और वहाँ के लोगों को इस्लाम की दावत दें। हज़रत मुसअब (रज़ि॰) की कोशिशों से औस और ख़ज़रज के बहुत-से लोग मुसलमान हो गए। मुसलमान होनेवालों में उनके बड़े-बड़े सरदार भी शामिल थे।

अगले साल सन् तेरह (13) नुबूवत में यसरिब से पचहत्तर (75) मुसलमान हज के क़ाफ़िले के साथ मक्का आए । रसूल (सल्ल॰) ने अपने चचा हज़रत अब्बास (रज़ि॰) के साथ रात के वक़्त अक़बा की घाटी में उन लोगों से मुलाक़ात की। उन लोगों ने रसूल (सल्ल॰) से बैअत की और नबी (सल्ल॰) को दावत दी कि आप हमारे पास यसरिब आ जाएँ, हम मरते दम तक आप (सल्ल॰) की हिफ़ाज़त और मदद करेंगे।

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "तो फिर मेरा मरना-जीना भी तुम्हारे साथ होगा।" फिर आप (सल्ल॰) ने उन लोगों को जन्नत की ख़ुशख़बरी दी और वे ख़ुश होकर वापस गए। आप (सल्ल॰) की मदद करनेवाले लोग 'अनसार' के लक़ब से मशहूर हुए जिसका मतलब 'मददगार' है।

मेराज का वाक़िआ

इससे कुछ पहले मेराज का वाक़िआ पेश आया। अल्लाह अपनी क़ुदरत से नबी (सल्ल॰) को बैतुल-मक़दिस ले गया। वहाँ से आप (सल्ल॰) को आसमान की सैर कराई। क़ुदरत के अजूबे दिखाए और फिर वापस भेज दिया। यह सब कुछ एक ही रात में हुआ। पहले नमाज़ की दो रक्अतें होती थीं। मेराज में पाँच वक़्त की नमाज़ें फ़र्ज़ कर दी गईं।

रसूले-पाक (सल्ल०) ने अपना देश छोड़ दिया

अक़बा की बड़ी बैअ्त के बाद रसूल (सल्ल०) ने अल्लाह के हुक्म से मुसलमानों को यसरिब की तरफ़ हिजरत करने की हिदायत फ़रमाई। कुछ लोगों को छोड़कर धीरे-धीरे सारे मुसलमान मक्का से हिजरत करके यसरिब चले गए। अल्लाह ने उन मुसलमानों को 'मुहाजिर' का नाम दिया। मुसलमानों को इस तरह अमन व शान्ति की जगह जाते देख क़ुरैश के इस्लाम-दुश्मन गुस्से से भड़क उठे। एक दिन इकट्ठा होकर उन्होंने यह फ़ैसला किया कि एक तयशुदा रात में हर क़बीले का एक-एक आदमी इकट्ठा हो और सब मिलकर रसूल (सल्ल०) को क़त्ल कर डाले। उधर अल्लाह ने नबी (सल्ल०) को हिजरत की इजाज़त दे दी। यह इजाज़त उस दिन मिली जिसके बाद आनेवाली रात में इस्लाम-दुश्मनों ने नबी (सल्ल०) को शहीद करने का फ़ैसला किया था। जब रात हुई तो आप (सल्ल०) ने हज़रत अली (रज़ि०) को अपने बिस्तर पर सुला दिया और उनसे फ़रमाया, "तुम मेरे पास रखी हुई अमानतें उनके मालिकों को वापस करने के बाद यसरिब आ जाना।"

उस वक़्त तक इस्लाम-दुश्मनों ने आप (सल्ल०) के मकान को घेर लिया था। अल्लाह ने उनकी आँखों पर परदा डाल दिया और नबी (सल्ल०) उनके बीच से निकलकर सीधे हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) के घर गए। उनसे मक्का छोड़ देने का मशवरा पहले ही हो चुका था। वे तुरन्त आप (सल्ल०) के साथ चल पड़े। चलने से पहले नबी (सल्ल०) ने काबा की तरफ़ मुँह करके बड़े दुख भरे अन्दाज़ में फ़रमाया—

> "ऐ मक्का, ख़ुदा की क़सम! तू मुझे ख़ुदा की ज़मीन में सबसे बढ़कर प्यारा है, अगर तेरे रहनेवाले मुझे यहाँ से नहीं निकालते तो मैं तुझे छोड़कर कभी नहीं निकलता।"

मक्का के दक्षिण में तीन मील की दूरी पर 'सौर' नाम की एक पहाड़ी है। दोनों साथी उसी पहाड़ी की एक गुफ़ा में छिप गए। उधर इस्लाम-दुश्मनों ने आप (सल्ल०) के बिस्तर पर हज़रत अली (रज़ि०) को सोता पाया तो हैरान

रह गए। वे समझ गए कि रसूल (सल्ल०) बचकर निकल गए हैं। उन्होंने आप (सल्ल०) की खोज में चारों तरफ़ आदमी दौड़ा दिए। कुछ आदमी सौर की गुफ़ा के मुँह तक पहुँच गए। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) उनकी आहट पाकर घबरा गए। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "घबराओ नहीं, अल्लाह हमारे साथ है।" अल्लाह की क़ुदरत! इस्लाम-दुश्मन रसूल (सल्ल०) को न देख सके और वापस चले गए। आप (सल्ल०) तीन दिन और तीन रात सौर की गुफ़ा में रहे। इस मुद्दत में हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) के आज़ाद किए हुए गुलाम आमिर-बिन-फ़ुहैरा (रज़ि०), जिन्होंने उस वक़्त तक इस्लाम क़बूल नहीं किया था, हर दिन बकरियाँ चराते-चराते शाम के वक़्त वहाँ आ जाते और आप (सल्ल०) को बकरियों का दूध दे जाते। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) की बड़ी बेटी हज़रत असमा (रज़ि०) हर दिन ताज़ा खाना पहुँचा जाती थीं। तीन दिन के बाद दोनों साथी गुफ़ा से निकले। आमिर-बिन-फ़ुहैरा (रज़ि०) साथ थे। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) ने ऊँटनियों का इन्तिज़ाम पहले से कर रखा था। वे सब उनपर सवार होकर यसरिब की तरफ़ चल पड़े।

दूसरी तरफ़ क़ुरैश ने यह एलान किया कि मुहम्मद (सल्ल०) को पकड़कर लानेवाले को सौ (100) ऊँट इनाम में दिए जाएँगे। एक सहराई क़बीला बनू-मुदलिज के सरदार सुराक़ा ने यह एलान सुना तो वह घोड़े पर सवार होकर नबी (सल्ल०) की तलाश में निकला और आप (सल्ल०) के क़रीब पहुँच गया। उसी वक़्त उसके घोड़े ने ठोकर खाई और गिर पड़ा। उठकर फिर आगे बढ़ा तो उसका घोड़ा घुटनों तक रेत में धँस गया। अब सुराक़ा ने आप (सल्ल०) से गिड़गिड़ाकर माफ़ी माँगी और वापस चला गया।

रास्ते में नबी (सल्ल०) उम्मे-माबद के घर कुछ देर ठहरे, फिर आगे चल पड़े। आठ दिन के सफ़र के बाद आप (सल्ल०) क़ुबा पहुँचे। क़ुबा यसरिब से तीन मील दूर अनसार के क़बीला औस का एक गाँव था। वे लोग कई दिनों से आप (सल्ल०) का इन्तिज़ार कर रहे थे। उन्होंने बड़े जोश से आप (सल्ल०) का स्वागत किया। नबी (सल्ल०) उनके सरदार कुलसूम-बिन-हिज़्म (रज़ि०) के घर पर कुछ दिन ठहरे। इस मुद्दत में आप (सल्ल०) ने वहाँ एक मस्जिद बनाई जिसका नाम मस्जिदे-क़ुबा है। इसके बाद आप (सल्ल०) जुमा के दिन धूप निकल जाने के बाद यसरिब के लिए चल पड़े।

यसरिब बना नबी (सल्ल॰) का मदीना

यसरिब के मुसलमानों को मालूम हुआ कि नबी (सल्ल॰) तशरीफ़ ला रहे हैं तो वे ख़ुशी से खिल उठे। वे यसरिब से क़ुबा तक रास्ते के दोनों तरफ़ क़तार में खड़े हो गए। आप (सल्ल॰) क़ुबा से चलकर बनू-सालिम के मुहल्ले में पहुँचे तो जुमा की नमाज़ का वक़्त हो गया। आप (सल्ल॰) ने सवारी से उतरकर ख़ुत्बा दिया, फिर जुमा की नमाज़ पढ़ाई। नमाज़ के बाद नबी (सल्ल॰) यसरिब में दाख़िल हुए तो हर तरफ़ जश्न का माहौल था। छोटे बच्चे उछल-कूद रहे थे। 'अल्लाहु-अकबर' 'अल्लाहु-अकबर' और 'अल्लाह के रसूल आए', 'अल्लाह के रसूल आए' के नारे लगा रहे थे। बाज़ार और मकान की छतों पर औरतों और बच्चों की भीड़ थी। बच्चियाँ ख़ुशी के मारे दफ़ बजा-बजाकर आप (सल्ल॰) की तारीफ़ में गीत गा रही थीं। हर आदमी चाहता था कि रसूल (सल्ल॰) उसके घर ठहरें। लोग रास्ते में जगह-जगह आप (सल्ल॰) की ऊँटनी की नकेल थामकर कहते थे, "ऐ अल्लाह के रसूल! हमारे मेहमान बन जाएँ।" आप (सल्ल॰) फ़रमाते, "ऊँटनी को छोड़ दो, जिस घर के सामने यह बैठ जाएगी, वहीं मैं ठहरूँगा।" ऊँटनी हज़रत अबू-अय्यूब (रज़ि॰) के मकान के सामने एक मैदान में रुकी और वहीं बैठ गई। हज़रत अबू-अय्यूब (रज़ि॰) की ख़ुशी का कोई ठिकाना न रहा। वे तुरन्त नबी (सल्ल॰) का सामान अपने घर में ले गए और आप (सल्ल॰) को अपना मेहमान बना लिया। उस दिन से यसरिब का नाम 'मदी न-तुन-नबी' (नबी का शहर) पड़ गया। हिजरी सन् इसी घटना की यादगार है।

मस्जिदे-नबवी की तामीर

जिस मैदान में नबी (सल्ल॰) की ऊँटनी रुकी थी, वह ज़मीन दो यतीम बच्चों की थी। कुछ दिनों बाद आपने वह ज़मीन ख़रीद ली और वहाँ एक मस्जिद बनाई। उसको बनाते वक़्त दूसरे मुसलमानों के साथ आप (सल्ल॰) भी ईंटें और गारा ढो-ढोकर लाते थे। यह मस्जिद 'मस्जिदे-नबवी' के नाम से मशहूर हुई। अब यह बहुत शानदार मस्जिद है।

मस्जिद के पास ही आप (सल्ल॰) ने कुछ कोठरियाँ बनवाईं जिनको हुजरा कहते हैं। सात महीनों के बाद आप अबू-अय्यूब (रज़ि॰) के घर से इन हुजरों में चले गए और अपने घरवालों को भी मक्का से बुला लिया।

भाईचारा

हिजरत के पाँच-छः महीनों के बाद नबी (सल्ल॰) ने मुहाजिरों और अनुसार को जमा किया और एक-एक मुहाजिर को एक-एक अनुसारी का भाई बना दिया। अनुसार ने अपने मुहाजिर भाइयों को दिल से अपना भाई माना और उनसे सगे भाइयों जैसा बर्ताव किया। उन्होंने उनको न सिर्फ़ अपनी आधी-आधी ज़मीन और दौलत बाँट दी, बल्कि खेती-बाड़ी में भी शरीक कर लिया और कारोबार में भी मदद दी।

यहूदियों से समझौता

मदीना में बहुत-से यहूदी बसे हुए थे। वे बड़े मालदार थे। मदीना के वासियों पर उनका बड़ा गहरा असर था। जब नबी (सल्ल॰) मदीना आए तो इस ख़याल से कि कहीं यहूदी अमन-शान्ति में बाधा न बनें, आप (सल्ल॰) ने उनसे एक समझौता किया जिसकी बड़ी-बड़ी शर्तें ये थीं–

1. यहूदियों को अपने मज़हब पर चलने की पूरी आज़ादी होगी।
2. मुसलमान और यहूदी मिल-जुलकर रहेंगे।
3. अगर मदीना पर किसी दुश्मन ने हमला किया तो दोनों मिलकर उसका मुक़ाबला करेंगे।

मदीना के मुनाफ़िक़ (कपटाचारी)

मदीना में कुछ ऐसे लोग भी थे जो अपने-आपको मुसलमान कहते थे लेकिन हक़ीक़त में इस्लाम के ख़िलाफ़ थे। अल्लाह ने ऐसे लोगों को 'मुनाफ़िक' का लक़ब दिया। उनका सरदार मदीना का एक मालदार आदमी अब्दुल्लाह-बिन-उबई था। हिजरत से पहले मदीना के लोगों ने उसे अपना बादशाह बनाने का फ़ैसला कर लिया था और उसके लिए ताज भी बनवा लिया था। लेकिन जब नबी (सल्ल॰) मदीना आ गए तो यह मामला ख़त्म हो गया। इसलिए उसे आप (सल्ल॰) से बहुत नफ़रत थी।

बद्र की लड़ाई

(2 हिजरी)

नबी (सल्ल॰) के मदीना आ जाने के बाद भी क़ुरैश ने अपनी शरारतें नहीं छोड़ीं। उन्हें इस बात का गुस्सा था कि वे अब मुसलमानों को नहीं सता सकते थे। उन्होंने मदीना के मुनाफ़िक़ों और यहूदियों को पैग़ाम (सन्देश) भेजा कि तुम मुसलमानों को मदीना से निकाल दो। मुसलमान चौकन्ना थे इसलिए उनका कोई वश नहीं चला। अब क़ुरैश मुसलमानों को नुक़सान पहुँचाने के नित-नए उपाय सोचने लगे।

नबी (सल्ल॰) उनके बुरे इरादों को ख़ूब जानते थे। इसलिए आप (सल्ल॰) मुसलमानों की छोटी-छोटी टुकड़ियाँ इधर-उधर भेजते रहते थे ताकि क़ुरैश की शरारतों पर रोक लगी रहे और वे यह भी समझ लें कि मुसलमान उनके सीरिया जानेवाले कारोबारी क़ाफ़िले को रोक सकते हैं। फिर भी एक बार उनके एक सरदार कुर्ज़-बिन-जाबिर ने मदीना की एक चरागाह पर छापा मारा और मुसलमानों के ऊँट लूटकर ले गया। इस घटना के तीन-चार महीने बाद मुसलमानों की एक टुकड़ी से क़ुरैश के एक क़ाफ़िले की झड़प हो गई जिसमें क़ुरैश का एक आदमी मारा गया और दो पकड़ लिए गए। अब क़ुरैश ने मदीना पर चढ़ाई करने का पक्का इरादा कर लिया। उन्होंने अबू-सुफ़ियान की सरदारी में एक बड़ा कारोबारी क़ाफ़िला सीरिया भेजा ताकि वहाँ से माल के बदले में जो सामान और नफ़ा मिले उससे लड़ाई की ख़ूब तैयारी करें। जब यह क़ाफ़िला सीरिया से वापस आ रहा था, मुसलमान उसको रोकने के लिए निकले। मक्कावालों को ख़बर मिली तो उनके एक हज़ार (1000) बहादुर पूरी तैयारी के साथ हथियार लेकर क़ाफ़िले की मदद के लिए चल पड़े। क़ाफ़िला तो बचकर निकल गया। लेकिन क़ुरैश की फ़ौज मदीना की तरफ़ बढ़ती चली गई।

मदीना से अस्सी (80) मील दूर दक्षिण-पश्चिम में बद्र नामी मक़ाम है। यहाँ क़ुरैश का सामना मुसलमानों से हुआ। क़ुरैश की फ़ौज के पास सात

सौ (700) ऊँट, सौ (100) घोड़े और ढेरों हथियार थे। मक्का के बड़े-बड़े सरदार और नामी बहादुर उस फ़ौज में शामिल थे। उधर मुसलमान सिर्फ़ तीन सौ तेरह (313) थे। पूरी फ़ौज में दो या तीन घोड़े थे और सत्तर (70) सवारी के ऊँट। फिर बहुत से मुसलमानों के पास पूरे हथियार भी नहीं थे, मगर उनके ईमान के जोश और हौसले का हाल यह था कि रास्ते में जब नबी (सल्ल॰) ने उनसे राय ली तो हज़रत मिक़दाद (रज़ि॰) ने उठकर कहा—

"ऐ अल्लाह के रसूल! हम मूसा (अलैहि॰) की क़ौम की तरह नहीं कहेंगे कि तू और तेरा रब जाकर लड़े, हम तो यहीं बैठे हैं। ख़ुदा की क़सम, जब तक हमारी जान में जान है हम आपके दाएँ लड़ेंगे, बाएँ लड़ेंगे, आगे लड़ेंगे, पीछे लड़ेंगे।"

लड़ाई शुरू होने से पहले नबी (सल्ल॰) ने गिड़गिड़ाकर अल्लाह से दुआ माँगी—

"ऐ अल्लाह! अगर ये थोड़े-से मुसलमान मारे गए तो फिर क़ियामत तक तेरी इबादत करनेवाला कोई न होगा। ऐ अल्लाह! तूने मुझसे जो वादा किया है उसे पूरा कर।"

उस ज़माने में रिवाज था कि पहले एक-एक, दो-दो आदमी मैदान में निकलकर लड़ते, फिर लड़ाई शुरू हो जाती। इस लड़ाई में सबसे पहले उतबा अपने भाई शैबा और बेटे वलीद को साथ लेकर निकला। मुसलमानों की तरफ़ से तीन अन्सारी आगे बढ़े। उतबा ने उन्हें देखा तो पुकारा, "ऐ मुहम्मद! ये लोग हमारे जोड़ के नहीं हैं, हमारी क़ौम के लोगों को हमारे मुक़ाबले पर भेजो।

अब, नबी (सल्ल॰) के हुक्म पर हज़रत हमज़ा (रज़ि॰), हज़रत अली (रज़ि॰) और हज़रत उबैदा-बिन-हारिस (रज़ि॰) मैदान में उतरे। लड़ाई शुरू हुई तो हज़रत हमज़ा (रज़ि॰) ने उतबा को और हज़रत अली (रज़ि॰) ने वलीद को क़त्ल कर दिया। लेकिन हज़रत उबैदा (रज़ि॰) को शैबा ने घायल कर दिया। हज़रत अली (रज़ि॰) ने आगे बढ़कर शैबा को भी क़त्ल कर दिया और ज़ख़्मी उबैदा (रज़ि॰) को मैदान से उठा लाए।

अब घमासान की लड़ाई शुरू हो गई। मुसलमान बड़ी बहादुरी से लड़े और अपने से तीन गुना इस्लाम-दुश्मनों के दाँत खट्टे कर दिए। क़ुरैश के सत्तर (70) आदमी मारे गए जिसमें उनके बड़े-बड़े सरदार भी शामिल थे। अबू-जह्ल को दो अनुसारी नौजवानों मुआज़ (रज़ि॰) और मुअव्विज़ (रज़ि॰) ने ढूँढ़कर क़त्ल किया क्योंकि उन्होंने सुना था कि वह नबी (सल्ल॰) को गालियाँ देता है।

मुसलमानों ने सत्तर (70) आदमियों को क़ैद कर लिया। उन क़ैदियों को उन्होंने बड़े आराम से रखा। जो कुछ घर में पकता उन क़ैदियों को खिलाते और ख़ुद खजूरें खाकर गुज़ारा कर लेते। मालदार क़ैदियों को उनके सगे-सम्बन्धी एक ख़ास धन जिसे 'फ़िदया' कहा जाता है देकर छुड़ा ले गए। पढ़े-लिखे ग़रीब क़ैदियों से कहा गया कि वे दस-दस मुसलमान बच्चों को पढ़ना-लिखना सिखा दें तो उन्हें छोड़ दिया जाएगा। जो क़ैदी ग़रीब थे और लिखना-पढ़ना भी नहीं जानते थे उनको वैसे ही आज़ाद कर दिया गया।

बद्र की लड़ाई हिजरत के दूसरे साल रमज़ान के महीने में हुई।

जब क़ुरैश की हार की ख़बर मक्का पहुँची तो हर तरफ़ हाहाकार मच गया। बद्र में जो इस्लाम-दुश्मन मारे गए थे उनकी रिश्तेदार औरतें बैन (नौहा) करतीं और मर्दों को उनका बदला लेने पर उकसातीं। उनके बैन और ताने सुन-सुनकर क़ुरैश ने मदीना पर हमला करने की तैयारी बड़े जोश से शुरू कर दी।

उहुद की लड़ाई

(3 हिजरी)

हिजरत के तीसरे साल शव्वाल के महीने में मक्का के तीन हज़ार (3000) इस्लाम-दुश्मन मदीना पर चढ़ाई करने के लिए निकले। उनके सरदार अबू-सुफ़ियान थे। उस सेना के साथ अबू-सुफ़ियान की बीवी हिन्दा और बहुत-सी दूसरी औरतें भी थीं। वे मर्दों को जोश दिलाने के लिए दफ़ बजा-बजाकर लड़ाई के गीत गाती थीं। इस्लाम-दुश्मनों ने मदीना से तीन मील की दूरी पर उहुद पहाड़ के क़रीब डेरा डाला। नबी (सल्ल॰) एक हज़ार (1000) आदमियों के साथ उनके मुक़ाबले के लिए शहर से निकले। अब्दुल्लाह-बिन-उबई अपने साथ तीन सौ (300) मुनाफ़िक़ों को लेकर रास्ते से ही वापस लौट गया और आप (सल्ल॰) के साथ सात सौ (700) सच्चे मुसलमान रह गए। नबी (सल्ल॰) ने मुसलमानों की क़तारें इस तरह लगाईं कि उनके पीछे उहुद पहाड़ था और सामने दुश्मन।

उस पहाड़ में एक दर्रा था। नबी (सल्ल॰) ने पचास (50) तीरन्दाज़ उस दर्रे पर खड़े कर दिए ताकि दुश्मन उस दर्रे के रास्ते से मुसलमानों पर पीछे की तरफ़ से हमला न कर दें। पहले एक-एक दो-दो आदमियों ने एक-दूसरे का मुक़ाबला किया और उसके बाद घमासान की लड़ाई शुरू हो गई। बहादुर मुसलमानों ने अपनी तादाद से चार गुना दुश्मन के छक्के छुड़ा दिए और उसे भागने पर मजबूर कर दिया। दर्रे पर जो तीरन्दाज़ खड़े थे उन्होंने सोचा कि अब यहाँ खड़े रहने का क्या फ़ायदा है, और यह सोचकर उनमें से बहुत-से आदमी दर्रे से हट गए। यह देखकर दुश्मनों के एक सवार दस्ते ने जिसके सरदार ख़ालिद-बिन-वलीद थे दर्रे में से गुज़रकर उन मुसलमानों पर पीछे से हमला कर दिया जो भाग जानेवाले दुश्मनों का माल जमा कर रहे थे। क़ुरैश के जो आदमी भागे जा रहे थे वे भी अब पलट पड़े और बहुत-से मुसलमानों को शहीद कर डाला। इस अचानक हमले से कुछ मुसलमानों को छोड़कर बाक़ी सब इधर-उधर बिखर गए। नबी (सल्ल॰) के प्यारे चचा हज़रत हमज़ा (रज़ि॰) बड़ी बहादुरी से लड़ रहे थे। तभी वहशी नाम के एक हबशी गुलाम

ने क़ुरैश से इनाम लेने के लालच में घात लगाकर उनपर अपना नेज़ा (भाला) फेंका जिससे वे शहीद हो गए। बद्र की लड़ाई में हिन्दा के बाप, भाई और चचा मारे गए थे। उसने अपना दिल ठण्डा करने के लिए हज़रत हमज़ा (रज़ि॰) के कान-नाक काटकर उनका हार बनाया और गले में डाला। फिर उनका पेट फाड़कर कलेजा निकाला और चबाकर थूक दिया।

एक दुश्मन ने नबी (सल्ल॰) पर पत्थर फेंका जिससे आप (सल्ल॰) के दो दाँत शहीद हो गए। एक और दुश्मन ने तलवार का वार करके नबी (सल्ल॰) को ज़ख़्मी कर दिया। उस मौक़े पर बहुत-से मुसलमानों ने आप (सल्ल॰) पर अपनी जानें क़ुरबान कर दीं। तभी किसी ने ख़बर उड़ा दी कि नबी (सल्ल॰) शहीद हो गए हैं। जो मुसलमान दूर थे वे इस ख़बर से परेशान हो गए लेकिन जल्द ही उन्होंने आप (सल्ल॰) को देख लिया और सिमटकर नबी (सल्ल॰) के पास जमा हो गए, फिर आप (सल्ल॰) को साथ लेकर पहाड़ की चोटी पर चढ़ गए। दुश्मनों ने भी पहाड़ पर चढ़ना चाहा लेकिन मुसलमानों ने पत्थरों को ढुलका-ढुलकाकर उन्हें भगा दिया। इस लड़ाई में सत्तर (70) मुसलमान शहीद हुए, उनमें छियासठ (66) अनूसार और चार (4) मुहाजिर थे। दुश्मनों ने इतनी कामयाबी को बहुत जाना और मैदान छोड़कर वापस चल पड़े। मुसलमानों ने आठ (8) मील तक उनका पीछा किया। लेकिन वे भाग गए। आप (सल्ल॰) ने लड़ाई में शहीद होनेवाले मुसलमानों को उहुद के मैदान में ही दफ़न किया और फिर वापस मदीना तशरीफ़ ले आए। इतनी बड़ी तादाद में मुसलमानों की शहादत से आप (सल्ल॰) को बहुत सदमा हुआ लेकिन आप (सल्ल॰) ने सब्र से काम लिया और क़ुरैश की हिदायत के लिए दुआ की।

इस्लाम-दुश्मनों की धोखाबाज़ी

उहुद की लड़ाई हुए कुछ मुद्दत बीत चुका था। क़बीला अज़ल और क़बीला क़ारा से कुछ लोग मदीना आए और नबी (सल्ल॰) से मुलाक़ात की और कहा कि हमारे क़बीले ने इस्लाम क़बूल कर लिया है इसलिए आप (सल्ल॰) कुछ लोगों को हमारे साथ भेज दें ताकि वे हमारे क़बीले को इस्लाम

की बातें सिखा दें। आप (सल्ल॰) ने अपने दस (10) साथियों को उनके साथ भेज दिया। जब वे लोग रजीअ़ नामी जगह पर पहुँचे तो लिहयान क़बीले के दो सौ (200) तीरन्दाज़ों ने उन्हें घेर लिया। मुसलमानों ने मुक़ाबला किया लेकिन दो के सिवा सब शहीद हो गए। वे दो बच जानेवाले हज़रत ख़ुबैब-बिन-अदी अनुसारी (रज़ि॰) और हज़रत ज़ैद-बिन-दिसना अनुसारी (रज़ि॰) थे। ग़द्दार इस्लाम-दुश्मन उन्हें मक्का ले गए और वहाँ क़ुरैश के हाथों बेच दिया। क़ुरैश ने थोड़े दिनों तक उन्हें क़ैदी बनाए रखा फिर बड़ी बेरहमी से दोनों को सूली देकर शहीद कर डाला। दोनों ने सूली पर चढ़ने से पहले दो रकअत नमाज़ पढ़ी। क़ुरैश ने हज़रत ख़ुबैब (रज़ि॰) से पूछा, "तुम को ख़ुदा की क़सम! सच-सच बताओ कि क्या तुम पसन्द करोगे कि तुम्हारी जगह मुहम्मद को क़त्ल कर दिया जाए?"

उन्होंने तुरन्त कहा, "ख़ुदा की क़सम! मैं तो यह भी सहन नहीं कर सकता कि मुहम्मद (सल्ल॰) के पैर में काँटा चुभे और मैं घर में बैठा रहूँ।"

अबू-सुफ़ियान ने हज़रत ज़ैद (रज़ि॰) से भी ऐसा ही सवाल किया। उन्होंने भी वही जवाब दिया जो हज़रत ख़ुबैब (रज़ि॰) ने दिया था।

हिजरत के चौथे साल सफ़र के महीने में ऐसी ही एक दर्दनाक घटना फिर घटी। किलाब क़बीले का एक मालदार आदमी अबू-बरा नबी (सल्ल॰) के पास आया। उसने नबी (सल्ल॰) से दरख़ास्त की कि अपने कुछ साथी मेरे साथ भेज दीजिए ताकि वे मेरी क़ौम में इस्लाम फैलाएँ। मैं उनकी हिफ़ाज़त की ज़िम्मेदारी लेता हूँ। आप (सल्ल॰) ने अपने सत्तर (70) साथियों को उसके साथ कर दिया। उनमें बहुत-से क़ुरआन के हाफ़िज़ थे। वे सब बनू-सुलैम के इलाक़े में मऊना नाम के एक कुँए पर पहुँचे। वहाँ एक नजदी क़बीला बनू-आमिर के सरदार तुफ़ैल-बिन-आमिर ने एक के सिवा सबको घेरकर शहीद कर दिया। बच जानेवाले सहाबी हज़रत अम्र-बिन-उमैया (रज़ि॰) थे। उन्होंने मदीना पहुँचकर आप (सल्ल॰) को इस दर्दनाक घटना की ख़बर दी। कुछ रिवायतों के मुताबिक़ ये दोनों घटनाएँ चार (4) हिजरी में सफ़र के महीने में घटीं।

मुरैसीअ की लड़ाई

(5 हिजरी)

मदीना से लगभग सौ (100) मील दक्षिण-पश्चिम में मुरैसीअ नाम का एक जल स्रोत (चश्मा) था जिसके पास ख़ुज़ाआ क़बीला की एक शाख़ बनू-मुस्तलिक़ आबाद थी। सन् पाँच (5) हिजरी रजब के महीने में नबी (सल्ल॰) को ख़बर मिली कि बनू-मुस्तलिक़ का सरदार हारिस-बिन-अबी-ज़रार मदीना पर हमला करने की तैयारी कर रहा है। आप (सल्ल॰) मुसलमानों का एक क़ाफ़िला साथ लेकर शाबान महीने के शुरू में बनू-मुस्तलिक़ पर हमला किया। उन्होंने मुक़ाबला किया मगर हार गए। उनके ग्यारह (11) आदमी मारे गए और छः सौ (600) आदमियों को मुसलमानों ने क़ैद कर लिया। उनमें वहाँ के सरदार हारिस की बेटी जुवैरिया (रज़ि॰) भी थीं। नबी (सल्ल॰) ने उन्हें आज़ाद करके उनसे निकाह कर लिया। उनका ख़याल करते हुए मुसलमानों ने सभी क़ैदियों को छोड़ दिया।

ख़न्दक़ की लड़ाई

(5 हिजरी)

मदीना के यहूदियों ने मुसलमानों से सुलह का समझौता तो कर रखा था लेकिन उनके दिलों में खोट थी। वे हमेशा मुसलमानों को परेशान करते रहते थे। जब उनकी शरारतें बहुत बढ़ गईं तो बद्र की लड़ाई के एक महीने के बाद नबी (सल्ल॰) ने उनके बड़े ही घमण्डी और गुस्ताख़ क़बीले बनू-क़ैनुक़ाअ के क़िले की घेराबन्दी कर ली। पन्द्रह (15) दिनों के बाद उन्होंने हार मान ली। नबी (सल्ल॰) ने उनको मदीना से निकल जाने की सज़ा दी। उसके बाद मदीना के दूसरे बड़े क़बीले बनू-नज़ीर ने मक्का के इस्लाम-दुश्मनों से गठजोड़ किया और एक बार तो आप (सल्ल॰) को धोखे से शहीद कर देने की साज़िश भी रची। उहुद की लड़ाई के बाद मुसलमानों ने उनके क़िले को घेर लिया। 15 दिनों के बाद उन्होंने भी अपने हथियार फेंक दिए। नबी (सल्ल॰) ने उनको हुक्म दिया कि वे अपना माल और दूसरे सामान लेकर तुरन्त मदीना से निकल जाएँ। वे लोग वहाँ से आठ मंज़िल दूर एक शहर ख़ैबर में चले गए। वहाँ यहूदियों के बड़े-बड़े क़िले मौजूद थे। वहाँ से उन्होंने सारे अरब में मुसलमानों के ख़िलाफ़ अपनी साज़िशों का जाल फैला दिया और मक्का के क़ुरैश और कई दूसरे क़बीलों को मुसलमानों से लड़ने पर उभारा। इस तरह इस्लाम-दुश्मनों ने एक-एक करके दस हज़ार (10000) की फ़ौज तैयार कर ली। यह फ़ौज अबू-सुफ़ियान की सरदारी में ज़ी-क़ादा, पाँच हिजरी में मदीना की तरफ़ बढ़ी। नबी (सल्ल॰) को ख़बर मिली तो आप (सल्ल॰) ने शहर के अन्दर रहकर दुश्मनों से मुक़ाबले का फ़ैसला किया। शहर के तीन तरफ़ तो बाग़ और मकान थे। एक तरफ़ खुला मैदान था। नबी (सल्ल॰) के एक ईरानी सहाबी हज़रत सलमान फ़ारसी (रज़ि॰) ने सुझाव दिया कि खुले मैदान की तरफ़ एक ख़न्दक़ खोदकर शहर का बचाव किया जाए। यह सुझाव सबको पसन्द आया। तीन हज़ार (3000) मुसलमानों ने मिलकर बीस (20) दिनों में बड़ी लम्बी-चौड़ी और गहरी ख़न्दक़ खोद ली। नबी (सल्ल॰) ने भी इस काम में हिस्सा लिया।

दुश्मनों ने बीस (20) दिनों तक मदीना की घेराबन्दी की। शहर में रसद की कमी थी इसलिए मुसलमानों को कई-कई दिन तक भूखा रहना पड़ा। नबी (सल्ल॰) भी तीन (3) दिन तक भूखे रहे। दुश्मनों ने तीन-चार बार ख़न्दक़ पार करने की कोशिश की लेकिन मुसलमानों ने तीर और पत्थर बरसाकर उन्हें पीछे हटा दिया। एक दिन दुश्मन के चार घुड़सवारों ने ख़न्दक़ पार कर ली। उनमें अरब का मशहूर बहादुर अम्र-बिन-अब्दे-वुदूद भी था। हज़रत अली (रज़ि॰) ने उसे और उसके एक साथी को क़त्ल कर डाला। बाक़ी दो भाग गए। सबसे बड़ा ख़तरा यहूदियों के क़बीले बनू-क़ुरैज़ा से था जो मदीना के अन्दर बसा हुआ था और चोरी-छिपे दुश्मनों से मिल गया था। उनको शरारत से रोकने के लिए नबी (सल्ल॰) ने दो सौ (200) मुसलमान उनके मुहल्ले के सामने बिठा दिए।

अल्लाह की क़ुदरत कि कुछ दिनों के बाद दुश्मनों में फूट पड़ गई और फिर एक सख़्त ठण्डी रात को ऐसी तेज़ आँधी चली कि दुश्मनों के ख़ेमे उखड़ गए और उनकी हाँडियाँ चूल्हों से उलट गईं। उससे वे ऐसे घबराए कि घेराबन्दी छोड़कर भाग खड़े हुए। उनके भागने के बाद मुसलमानों ने बनू-क़ुरैज़ा के ग़द्दार यहूदियों को घेर लिया। उनमें जो लड़ने के क़ाबिले थे, ग़द्दारी की सज़ा में उन्हें क़त्ल कर दिया गया।

ख़न्दक़ की लड़ाई को क़ुरआन में अहज़ाब की लड़ाई कहा गया है। अहज़ाब का मतलब है बहुत-सी जमाअतें या गरोह। चूँकि इस लड़ाई में अरब के बहुत-से गरोहों ने मिलकर मदीना पर हमला किया था इसलिए इसको अहज़ाब की लड़ाई का नाम दिया गया।

हुदैबिया का समझौता

(6 हिजरी)

मुसलमानों को ख़ाना काबा से बड़ी मुहब्बत थी। वे छः साल से उसकी ज़ियारत और तवाफ़ (परिक्रमा) के लिए तड़प रहे थे। हिजरत के छठे साल ज़ी-क़ादा के महीने में नबी (सल्ल॰) चौदह सौ (1400) मुसलमानों को साथ लेकर मक्का की तरफ़ चल पड़े। क़ुरबानी के जानवर भी साथ थे। आप (सल्ल॰) का इरादा सिर्फ़ काबा की ज़ियारत और तवाफ़ का था। लड़ाई का ख़याल भी नहीं था, इसलिए नबी (सल्ल॰) ने मुसलमानों को मियान में रखी हुई तलवारों के अलावा कोई भी हथियार लेने से मना कर दिया था। उधर जब क़ुरैश को मुसलमानों के आने की ख़बर मिली तो वे भड़क उठे और लड़ने-मरने को तैयार हो गए। उन्होंने फ़ैसला किया कि मुसलमानों को किसी भी क़ीमत पर मक्का में दाख़िल नहीं होने देंगे। उनके बहुत-से जवान मुसलमानों का रास्ता रोकने के लिए निकल पड़े। नबी (सल्ल॰) को जब यह ख़बर मिली तो आप (सल्ल॰) रास्ता बदलकर मक्का से कुछ मील दूर हुदैबिया नामक एक मक़ाम पर चले गए और वहीं पड़ाव डाल दिया। हुदैबिया पहुँचकर नबी (सल्ल॰) ने क़ुरैश को पैग़ाम भेजा कि हम लड़ने के लिए नहीं आए हैं, बल्कि सिर्फ़ काबा की ज़ियारत और तवाफ़ करना चाहते हैं।

उस वक़्त ताइफ़ के एक धनी और इज़्ज़तदार आदमी उरवा-बिन-मसऊद मक्का आए हुए थे। क़ुरैश उनकी बहुत इज़्ज़त करते थे। वे क़ुरैश की तरफ़ से नबी (सल्ल॰) से बातचीत करने के लिए हुदैबिया आए। आप (सल्ल॰) ने उनसे भी वही बात कही जो क़ुरैश को भेजे गए पैग़ाम में कहीं थी।

उरवा मक्का वापस आए तो क़ुरैश से कहा, "भाइयो, मैंने बड़े-बड़े बादशाहों के दरबार देखें हैं लेकिन किसी बादशाह की ऐसी इज़्ज़त होते नहीं देखी जैसी मुहम्मद के साथी उनकी करते हैं। वे कोई हुक्म देते हैं तो सब उसको मानने के लिए दौड़ पड़ते हैं। वे कोई बात करते हैं तो सब चुप हो जाते हैं। वे वुज़ू करते हैं तो वे उस पानी को अपने हाथों और चेहरों पर

मलते हैं। मेरे ख़याल में भलाई इसी में है कि तुम उनसे समझौता कर लो।

क़ुरैश ने उरवा की बात नहीं मानी। नबी (सल्ल॰) ने फिर उनके पास एक दूत भेजा लेकिन क़ुरैश ने उनके साथ बुरा बर्ताव किया। उसके बाद आप (सल्ल॰) ने अपने प्यारे साथी और दामाद हज़रत उसमान ग़नी (रज़ि॰) को मक्का भेजा। क़ुरैश ने उन्हें अपने पास रोक लिया। उधर हुदैबिया में यह ख़बर फैल गई कि क़ुरैश ने हज़रत उसमान (रज़ि॰) को क़त्ल कर दिया।

नबी (सल्ल॰) ने यह सुना तो आप (सल्ल॰) ने बबूल के एक पेड़ के नीचे बैठकर अपने सभी साथियों से प्रतिज्ञा (बैअ्त) ली कि हम उसमान (रज़ि॰) का बदला लेने के लिए अपनी जान क़ुरबान कर देंगे। उस अह्द या बैअत को बैअते-रिज़वान कहा जाता है क्योंकि अल्लाह ने ये बैअ्त करनेवालों को अपने राज़ी हो जाने की ख़ुशख़बरी दी है।

बाद में पता चला कि उसमान (रज़ि॰) की शहादत की ख़बर ग़लत थी। लेकिन मुसलमानों के जोश और हौसले को देखकर क़ुरैश की हिम्मत टूट गई। उन्होंने कुछ शर्तों पर दस सालों के लिए समझौता कर लिया।

बड़ी-बड़ी शर्तें ये थीं–

1. मुसलमान इस साल वापस लौट जाएँ। अगले साल तीन दिन के लिए आएँ, उनके पास मियान के अन्दर डाली हुई तलवार के सिवा और कोई हथियार न हो।
2. क़ुरैश का कोई आदमी मुसलमान होकर चला जाए तो उसे वापस कर दिया जाएगा और अगर कोई मुसलमान मदीना छोड़कर मक्का आ जाए तो वापस नहीं किया जाएगा।
3. अरब के क़बीलों को इख़्तियार होगा कि वे क़ुरैश या मुसलमानों में जिसके साथ चाहें समझौता कर लें।

ये शर्तें यूँ तो मुसलमानों के ख़िलाफ़ थीं, लेकिन अल्लाह ने मुसलमानों की खुली जीत का एलान कर दिया क्योंकि क़ुरैश ने इस्लाम की राह में रोड़ा न बनने की प्रतिज्ञा की थी और यही मुसलमानों की जीत थी।

बादशाहों को इस्लाम की दावत

(6 हिजरी)

हुदैबिया के समझौते के बाद मुसलमानों को कुछ इत्मीनान हुआ तो रसूले-पाक (सल्ल॰) ने अपने कुछ साथियों को इस्लाम की दावत के ख़त देकर अरब के रईसों और पड़ोसी देश के बादशाहों के पास भेजा।

हज़रत अम्र-बिन-उमैया (रज़ि॰) हबशा के बादशाह नज्जाशी के पास ख़त ले गए। नज्जाशी पहले ही मुसलमान हो चुके थे। उन्होंने बड़ी इज़्ज़त से नबी (सल्ल॰) के ख़त को आँखों से लगाया और हज़रत जाफ़र (रज़ि॰) के हाथ पर दोबारा इस्लाम की बैअ़त की।

हज़रत हातिब-बिन-अबी-बलतआ (रज़ि॰) मिस्र के बादशाह मक़ूक़िस के पास ख़त ले गए। उन्होंने इस्लाम तो क़बूल नहीं किया लेकिन हज़रत हातिब (रज़ि॰) की बहुत इज़्ज़त की और उनके हाथ से बहुत-से तोहफ़े नबी (सल्ल॰) के लिए भेजे।

हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-हुज़ाफ़ा (रज़ि॰) ईरान के बादशाह ख़ुसरो परवेज़ के पास गए। वह बड़ा घमण्डी और बदतमीज़ आदमी था। उसने नबी (सल्ल॰) के भेजे हुए ख़त को फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर दिया। नबी (सल्ल॰) को इसकी ख़बर मिली तो आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "अल्लाह उसी तरह उसके देश को टुकड़े-टुकड़े कर देगा।"

रूम (रोम) का बादशाह जिसे क़ैसर या हिरक़्ल कहा जाता था, उसके पास दिहया-बिन-ख़लीफ़ा कलबी (रज़ि॰) ख़त लेकर गए। क़ैसर उन दिनों बैतुल-मक़दिस आया हुआ था। उसने ख़त पढ़कर हुक्म दिया कि अरब का कोई सौदागर अगर यहाँ मौजूद है तो उसे मेरे पास लाओ। इत्तिफ़ाक़ से अरब के सरदार अबू-सुफ़ियान कारोबार के सिलसिले में ग़ज़्ज़ा गए हुए थे। क़ैसर के सेवकों ने उन्हें ग़ज़्ज़ा से लाकर क़ैसर के सामने पेश कर दिया। क़ैसर ने उनसे नबी (सल्ल॰) के बारे में बहुत से सवाल पूछे। अबू-सुफ़ियान उस वक़्त तक इस्लाम नहीं लाए थे लेकिन क़ैसर के सामने उन्हें कोई ग़लत

बात कहने की हिम्मत नहीं हुई। उन्होंने साफ़-साफ़ कहा कि मुहम्मद (सल्ल०) का ख़ानदान बहुत इज़्ज़तवाला है। उनके माननेवाले दिन-ब-दिन बढ़ रहे हैं। उन्होंने कभी झूठ नहीं बोला। वे (सल्ल०) कहते हैं कि एक अल्लाह को मानो, किसी को उसका साझी न बनाओ, सच बोलो, नमाज़ पढ़ो, रिश्तेदारों का हक़ अदा करो, परहेज़गार बनो।

अबू-सुफ़ियान की बातें सुनकर क़ैसर बोल उठा कि अगर मैं वहाँ जा सकता तो नबी (सल्ल०) के पाँव धोता। क़ैसर की यह बात उसके दरबारियों को अच्छी नहीं लगी। क़ैसर भी उनकी नाराज़गी ताड़ गया और चुप हो गया। जब सारे दरबारी चले गए तो उसने दिहया कलबी (रज़ि०) से कहा कि मैं जानता हूँ कि तुम्हारे पैग़म्बर सच्चे हैं लेकिन मुझे अपनी जान और राज-पाट का ख़तरा है इसलिए मैं उनके लाए हुए मज़हब (धर्म) को क़बूल नहीं कर सकता।

अरब के जिन सरदारों के पास नबी (सल्ल०) के ख़त गए उनमें कुछ ने इस्लाम क़बूल कर लिया और कुछ अपने ही मज़हब पर जमे रहे।

ख़ैबर की लड़ाई

(7 हिजरी)

हिजाज़ के उत्तर दिशा में ख़ैबर का शहर यहूदियों का बहुत बड़ा गढ़ था। वहाँ उन्होंने सात-आठ मज़बूत क़िले बना रखे थे जिनमें बीस हज़ार (20000) सिपाही रहते थे। बनू-नज़ीर के यहूदियों को मदीना से निकाला गया तो वे भी यहीं आकर बस गए थे। वे सब इस्लाम के कट्टर दुश्मन थे। ख़न्दक़ की लड़ाई भी उनकी ही शरारत की वजह से हुई थी। अब वे फिर अरबों के एक बड़े क़बीले ग़तफ़ान को साथ मिलाकर मदीना पर चढ़ाई करने की तैयारी कर रहे थे। नबी (सल्ल.) को उनके इरादों की ख़बर मिली तो आप (सल्ल.) सोलह सौ (1600) मुसलमानों को लेकर ख़ैबर पर हमला करने के लिए मदीना से निकल पड़े। मुसलमानों ने ख़ैबर पहुँचते ही यहूदियों के क़िले को घेर लिया। दूसरे सभी क़िले तो बहुत जल्द एक-एक करके जीत लिए गए लेकिन क़मूस नाम के एक क़िले को जीतने में अभी तक कामयाबी नहीं मिली थी। उसका सरदार एक मशहूर यहूदी मरहब था। नबी (सल्ल.) के कई साथियों ने कई बार उस क़िले पर फ़ौज के साथ हमला किया लेकिन कामयाबी नहीं मिली।

एक दिन शाम के वक़्त नबी (सल्ल.) ने फ़रमाया कि कल मैं ख़ुदा और उसके रसूल के प्यारे एक ऐसे आदमी को झण्डा दूँगा जिसके हाथ पर अल्लाह हमें जीत दिलाएगा। दूसरे दिन सुबह-सवेरे ही आप (सल्ल.) ने हज़रत अली (रज़ि.) को बुला भेजा। उनकी आँखें दुख रही थीं और वे अपने ख़ेमे में पड़े थे। जब वे आए तो नबी (सल्ल.) ने उनकी आँखों में अपना मुबारक थूक लगाया जिससे उनकी आँखों की तकलीफ़ दूर हो गई। फिर आप (सल्ल.) ने उन्हें झण्डा दिया, उनके लिए दुआ फ़रमाई और क़मूस नामी क़िले पर हमला करने का हुक्म दिया। हज़रत अली (रज़ि.) क़मूस के क़िले की तरफ़ बढ़े। मरहब जोशीले शेर पढ़ता हुआ उनके सामने आया लेकिन हज़रत अली (रज़ि.) ने तलवार के एक ही वार से उस नामी बहादुर का काम तमाम कर दिया। फिर वे फ़ौज को लेकर आगे बढ़े और यहूदियों

को पीछे धकेलते-धकेलते क़िले का दरवाज़ा तोड़कर अन्दर घुस गए। इस तरह क़मूस पर जीत का झण्डा लहराया गया और ख़ैबर की लड़ाई ख़त्म हो गई। इस लड़ाई में तिरानवे (93) यहूदी मारे गए और पन्द्रह (15) मुसलमान शहीद हुए।

जीत के बाद नबी (सल्ल॰) कुछ दिन तक ख़ैबर में ठहरे। यहूदियों की शरारतों की वजह से मुसलमान उनसे बहुत नाराज़ थे लेकिन नबी (सल्ल॰) बहुत दयालु थे। आप (सल्ल॰) ने उनसे नर्मी का बर्ताव किया और इस शर्त पर सुलह कर ली कि यहूदी ख़ैबर की पैदावार का आधा हिस्सा हर साल मुसलमानों को दिया करेंगे।

वे मुसलमान जो इस्लाम-दुश्मनों के ज़ुल्म से परेशान होकर हबशा चले गए थे, उनमें से कुछ तो पहले ही वापस आ गए थे, बाक़ी उस वक़्त पहुँचे जब ख़ैबर जीता जा चुका था। आनेवालों में नबी (सल्ल॰) के चचेरे भाई हज़रत जाफ़र-बिन-अबी-तालिब (रज़ि॰) भी थे। उनके आने से मुसलमानों की ख़ुशी दो गुनी हो गई—एक ख़ैबर पर जीत की और दूसरी कई सालों से बिछड़े हुए भाइयों के मिलने की।

उमरा
(7 हिजरी)

हज के लिए हर साल ज़िल-हिज्जा के महीने में ख़ास दिन मुक़र्रर हैं। उन ख़ास दिनों के अलावा अगर किसी वक़्त काबा का तवाफ़ (परिक्रमा) किया जाए तो उसे उमरा कहते हैं। यह एक तरह का छोटा हज है जिसमें काबा के चारों तरफ़ तवाफ़ किया जाता है और सफ़ा और मरवा की पहाड़ियों के बीच तेज़-तेज़ चलकर कुछ दुआएँ पढ़ी जाती हैं।

हुदैबिया में क़ुरैश से जो समझौता हुआ था उसमें यह फ़ैसला हुआ था कि मुसलमान अगले साल तीन दिन के लिए मक्का आकर उमरा कर सकेंगे। उसी फ़ैसले के मुताबिक़ नबी (सल्ल॰) ज़ी-क़ादा सन् 7 हिजरी में बहुत से मुसलमानों को साथ लेकर मक्का गए। क़ुरैश शहर से बाहर निकल गए। मुसलमानों ने बड़े जोश, हौसले और दिली ख़ुशी के साथ उमरा किया। शर्त के मुताबिक़ तीन दिन पूरे होने पर नबी (सल्ल॰) मुसलमानों को लेकर शहर से निकल आए और मदीना की तरफ़ चल पड़े।

मुअता की लड़ाई

(8 हिजरी)

हुदैबिया के समझौते के बाद नबी (सल्ल॰) ने बादशाहों और सरदारों को ख़त लिखे। एक ख़त्त आप (सल्ल॰) ने हारिस-बिन-उमैर (रज़ि॰) के हाथों बसरा के ईसाई सरदार को भी भेजा। वे ख़त पहुँचाकर वापस आ रहे थे कि रास्ते में बलक़ा के सरदार शुरहबील-बिन-अम्र ग़स्सानी ने उन्हें शहीद कर डाला। क़ासिद (दूत) को क़त्ल करना बहुत बुरा समझा जाता था। नबी (सल्ल॰) को यह ख़बर सुनकर बहुत दुख हुआ। आप (सल्ल॰) ने ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि॰) को तीन हज़ार मुसलमानों की फ़ौज के साथ हारिस (रज़ि॰) का बदला लेने भेजा। आप (सल्ल॰) ने फ़ौज को विदा करते हुए यह हुक्म दिया कि ज़ैद (रज़ि॰) शहीद हो जाएँ तो जाफ़र-बिन-अबी-तालिब (रज़ि॰) सेना के सरदार होंगे, वे भी शहीद हो जाएँ तो अब्दुल्लाह-बिन-रवाहा (रज़ि॰) सरदार होंगे।

उधर शुरहबील ने मुसलमानों के मुक़ाबले के लिए एक लाख की फ़ौज जमा कर ली। इत्तिफ़ाक़ से उस वक़्त रोम का बादशाह भी एक बड़ी फ़ौज के साथ वहाँ मौजूद था और शुरहबील की मदद कर रहा था। सीरिया के एक गाँव मुअता के क़रीब मुसलमानों और रोमियों का मुक़ाबला हुआ। मुसलमान बड़ी बहादुरी से लड़े और बहुत-से रोमियों को मौत के घाट उतार दिया लेकिन रोमियों की तादाद मुसलमानों से चौंतीस गुना ज़्यादा थी इसलिए वे कम होने में नहीं आते थे। हज़रत ज़ैद, हज़रत जाफ़र और अब्दुल्लाह-बिन-रवाहा (रज़ि॰) बड़ी बहादुरी से लड़े और अनगिनत ज़ख़्म खाकर एक-एक करके शहीद हो गए। उसके बाद ख़ालिद-बिन-वलीद (रज़ि॰) ने झण्डा हाथ में लिया और ऐसी बहादुरी से लड़े कि दुश्मन को पीछे धकेल दिया और मुसलमानों को दुश्मन के घेरे से बचाकर ले आए। इस लड़ाई में हज़रत ख़ालिद के हाथों से नौ तलवारें टूटीं और नबी (सल्ल॰) ने उन्हें सैफ़ुल्लाह (अल्लाह की तलवार) का लक़ब दिया। ख़ालिद (रज़ि॰) हुदैबिया के समझौते के बाद मुसलमान हुए। इस्लाम अपनाने के बाद वे इस्लाम के बहुत बड़े कमाण्डर बन गए।

मक्का की फ़त्ह

(8 हिजरी)

हुदैबिया समझौते की एक शर्त यह थी कि जो क़बीले क़ुरैश के साथी बनना चाहें वे क़ुरैश के साथी बन जाएँ और जो मुसलमानों से दोस्ती करना चाहें वे मुसलमानों से दोस्ती कर लें। और जिस तरह क़ुरैश और मुसलमान दस (10) साल तक एक-दूसरे से नहीं लड़ेंगे उसी तरह उनके दोस्त क़बीले भी एक दूसरे से नहीं लड़ेंगे।

इसी समझौते के मुताबिक़ अरबों का एक क़बीला बनू-ख़ुज़ाआ मुसलमानों का साथी बन गया। एक दूसरा क़बीला बनू-बक्र क़ुरैश का साथी बन गया। उन दोनों क़बीलों में पुराने ज़माने से दुश्मनी चली आ रही थी। डेढ़ साल तक वे अमन-चैन से रहे फिर एक दिन बनू-बक्र क़बीले ने अचानक बनू-ख़ुज़ाआ क़बीले पर हमला कर दिया और बड़ी बेदर्दी से उनकी औरतों और बच्चों को क़त्ल कर दिया। क़ुरैश के लोगों ने बनू-बक्र की मदद की। बनू-ख़ुज़ाआ ने भागकर काबा में पनाह ली। वहाँ ख़ून बहाना हराम है लेकिन बनू-बक्र ने उन्हें काबा के अन्दर घुसकर क़त्ल किया। क़ुरैश ने इस ज़ुल्म में बनु-बक्र का पूरा-पूरा साथ दिया। बनू-ख़ुज़ाआ के चालीस (40) आदमी मदीना पहुँचे और नबी (सल्ल॰) से बनू-बक्र और क़ुरैश के ज़ुल्म की दुहाई दी। इस ज़ुल्म का हाल सुनकर नबी (सल्ल॰) को बहुत दुख हुआ। आप (सल्ल॰) ने क़ुरैश के पास अपना दूत भेजा कि बनू-ख़ुज़ाआ के जो लोग मारे गए हैं उनके ख़ून का बदला दो या फिर बनू-बक्र का साथ छोड़ दो। अगर यह दोनों शर्तें नहीं मानी तो फिर एलान कर दो कि हुदैबिया की सन्धि (सुलह) ख़त्म हो गई। क़ुरैश के जोशीले लोगों ने बड़े घमण्ड के साथ कह दिया कि हमें तीसरी शर्त मंज़ूर है। लेकिन दूत के जाने के बाद वे बड़े पछताए और अपने सरदार अबू-सुफ़ियान को मदीना भेजा ताकि हुदैबिया के समझौते को फिर से ताज़ा कर लें, लेकिन नबी (सल्ल॰) तैयार नहीं हुए।

नबी (सल्ल॰) ने मुसलमानों को लड़ाई की तैयारी का हुक्म दिया। लेकिन

कड़ी नज़र रखी कि क़ुरैश को इसकी ख़बर न होने पाए। दस (10) रमज़ान आठ (8) हिजरी को आप (सल्ल॰) ने दस हज़ार मुसलमानों के साथ कूच किया और मक्का से कुछ मील दूर 'मर्रुज़-ज़हरान' नामक मक़ाम पर पड़ाव डाला। क़ुरैश के कानों में मुसलमानों के आने की भनक पड़ी तो उन्होंने अबू-सुफ़ियान और दूसरे दो सरदारों को टोह लगाने के लिए भेजा। इत्तिफ़ाक़ से उनको रास्ते में नबी (सल्ल॰) के चचा हज़रत अब्बास (रज़ि॰) मिल गए जो आप (सल्ल॰) से मिलकर वापस आ रहे थे। हज़रत अब्बास (रज़ि॰) ने उनको बताया कि मुसलमानों की फ़ौज आ पहुँची है, अब क़ुरैश की ख़ैर नहीं है। अबू-सुफ़ियान घबरा गए और उनसे सलाह माँगने लगे। उन्होंने कहा कि तुम मेरे साथ चले आओ। वे हज़रत अब्बास (रज़ि॰) के साथ चल पड़े। रास्ते में हज़रत उमर (रज़ि॰) ने उन्हें देख लिया और उनपर तलवार लेकर झपटे लेकिन हज़रत अब्बास (रज़ि॰) ने उन्हें बचा लिया और उन्हें नबी (सल्ल॰) के पास ले गए। अबू-सुफ़ियान ने मुसलमानों को बहुत दुख दिए थे लेकिन जब वे आप (सल्ल॰) के सामने आए और अपने करतूतों पर शर्मिन्दा हुए तो आप (सल्ल॰) ने उन्हें बिलकुल माफ़ कर दिया और फ़रमाया कि तुम मक्का जाकर मेरी तरफ़ से एलान कर दो कि जो भी तुम्हारे (अबू-सुफ़ियान रज़ि॰ के) घर में या काबा में पनाह लेगा उसे अमान है और जो अपने घर का दरवाज़ा बन्द कर लेगा उसे भी अमान है।

अबू-सुफ़ियान (रज़ि॰) ने मक्का जाकर यही ऐलान कर दिया। दूसरे दिन इस्लामी फ़ौज बड़ी शान से मक्का में दाख़िल हुई। क़ुरैश को मुक़ाबले की हिम्मत न पड़ी। हाँ, कुछ जोशीले नौजवानों ने मुसलमानों के एक दस्ते को रोका और दो मुसलमानों को शहीद कर डाला, लेकिन जब मुसलमानों ने तलवारें निकालीं तो वे पन्द्रह-बीस लाशें छोड़कर भाग खड़े हुए।

मक्का में दाख़िल होकर नबी (सल्ल॰) सीधे काबा की तरफ़ चले। सात बार अल्लाह के घर के चारों तरफ़ घूमे फिर उसमें रखे हुए सारे बुतों को तोड़कर बाहर फेंक दिया। दीवारों पर नबियों के जो चित्र बने हुए थे उन्हें भी मिटा डाला। उसके बाद आप (सल्ल॰) काबा के अन्दर गए और दो रकअत नमाज़ पढ़ी। नमाज़ पढ़ने के बाद आप (सल्ल॰) ने क़ुरैश को बुला

भेजा। वे सब हाज़िर हुए और सिर झुकाकर खड़े हो गए।

नबी (सल्ल॰) ने उनकें सामने दिल में उतर जानेवाला ख़ुत्बा दिया, फिर उनसे पूछा, "तुम क्या समझते हो कि मैं तुम्हारे साथ क्या बर्ताव करनेवाला हूँ?"

सब ने जवाब दिया, "आप हमारे नेक भाई और नेक भतीजे हैं।"

आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "आज तुम्हारी कोई पकड़ नहीं, तुम सब आज़ाद हो।"

ये वही लोग थे जो सालों तक नबी (सल्ल॰) को सताते रहे थे। कोई ज़ुल्म ऐसा न था जो उन्होंने मुसलमानों पर न किया हो यहाँ तक कि उन्हें घर और वतन छोड़ने पर मजबूर कर दिया। नबी (सल्ल॰) चाहते तो उनकी बोटी-बोटी करा डालते, लेकिन आप (सल्ल॰) सारी दुनिया के लिए रहमत बनकर आए थे। नबी (सल्ल॰) ने उन ख़ून के प्यासों को भी माफ़ कर दिया। इसका असर यह हुआ कि कुछ को छोड़कर सारे के सारे मुसलमान हो गए।

हुनैन की लड़ाई

(8 हिजरी)

मक्का से पचास-साठ मील की दूरी पर हवाज़िन और सक़ीफ़ के ताक़तवर क़बीले बसे हुए थे। वे किसी के मातहत रहना पसन्द नहीं करते थे। मुसलमानों ने जब मक्का पर जीत का झण्डा लहराया तो वे गुस्से से तिलमिला उठे। उन्होंने एक बड़ी फ़ौज तैयार करके मुसलमानों पर हमला करने का इरादा किया। नबी (सल्ल॰) अभी मक्का में ही थे। आप (सल्ल॰) ने बारह हज़ार मुसलमानों के साथ दुश्मन के मुक़ाबले के लिए कूच किया।

हुनैन मक्का और ताइफ़ के बीच एक घाटी है। इस्लामी सेना उस घाटी में पहुँची तो घात में बैठे हुए हवाज़िन के तीरन्दाज़ों ने उनपर तीर की बौछार कर दी। इस्लामी सेना में मक्का के दो हज़ार आदमी ऐसे भी शामिल थे जिन्होंने अभी-अभी इस्लाम क़बूल किया था, वे मैदान छोड़कर इस तरह हटे कि सारी फ़ौज बेक़ाबू हो गई। बस, नबी (सल्ल॰) कुछ बहादुरों के साथ मैदान में खड़े रहे। उस वक़्त नबी (सल्ल॰) यह शेअर पढ़ रहे थे—

"मैं अब्दुल-मुत्तलिब का बेटा हूँ।

मैं अल्लाह का नबी हूँ।

इसमें कोई झूठ नहीं।"

नबी (सल्ल॰) ने हज़रत अब्बास (रज़ि॰) को जिनकी आवाज़ बहुत बुलन्द थी, हुक्म दिया कि मुसलमानों को पुकारें।

उन्होंने आवाज़ दी, "ऐ अनसार की जमाअत, ऐ वे लोगो जिन्होंने पेड़ के नीचे इस्लाम के लिए मर-मिटने की बैअत (प्रतिज्ञा) की थी...।"

इस आवाज़ के सुनते ही सारे मुसलमान पलट पड़े और इस जोश से लड़े कि दुश्मनों को कुचलकर रख दिया। हुनैन से कुछ दूर औतास नाम का एक मक़ाम है, इस्लाम-दुश्मनों की एक फ़ौज वहाँ जमा हो गई। मुसलमानों ने उसे भी हरा दिया। इस्लाम-दुश्मनों की फ़ौज का एक हिस्सा भागकर ताइफ़ के क़िले में चला गया। नबी (सल्ल॰) ने उसको घेर लिया लेकिन दो-तीन

हफ़्तों के बाद आप (सल्ल०) ने इस दुआ के साथ घेराबन्दी ख़त्म कर दी कि "ऐ अल्लाह इनको हिदायत दे और मेरे पास ला।"

इस लड़ाई में दुश्मन के तीरों और पत्थरों से जो मुसलमान शहीद हुए थे उन्हें आप (सल्ल०) ने ताइफ़ के बाहर दफ़न करा दिया।

हुनैन की लड़ाई में ग़नीमत का बहुत सारा माले-ग़नीमत मुसलमानों के हाथ आया। नबी (सल्ल०) ने माल और मवेशियों को मुसलमानों में बाँट दिया और छः हज़ार (6,000) क़ैदियों पर दया की और उन्हें छोड़ दिया। उनमें आप (सल्ल०) की दूध-पिलाई माँ हज़रत हलीमा (रज़ि०) की बेटी शैमा (रज़ि०) भी थीं। आप (सल्ल०) ने उनकी बहुत इज़्ज़त की और बहुत-से ऊँट और बकरियाँ देकर विदा किया। दूसरे तमाम क़ैदियों को भी आप (सल्ल०) ने कपड़े का एक-एक जोड़ा दिया। आप (सल्ल०) ने मक्का के नए-नए इस्लाम क़बूल करनेवाले लोगों को बहुत से ऊँट दिए। इसपर अनसार के कुछ नौजवानों को दुख हुआ और उनके मुँह से निकल गया—

> "इस्लाम के लिए क़ुरैश के इस्लाम-दुश्मनों से जान ख़तरे में डालकर हम लड़ते हैं लेकिन अब ग़नीमत का ज़्यादा माल क़ुरैश ही ले गए हैं।"

नबी (सल्ल०) ने ये बातें सुनीं तो अनसार को जमा किया और उनसे पूछा, "क्या तुमने ये बातें कहीं हैं?"

उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल हम सबने तो नहीं, हाँ, कुछ नौजवानों ने ऐसी बातें ज़रूर कही हैं।"

आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "क़ुरैश के ये लोग नए-नए ईमान लाए हैं, मैंने यह माल उनका हौसला बढ़ाने के लिए दिया है। क्या तुमको यह पसन्द नहीं कि लोग तो माल और मवेशी ले जाएँ और तुम अपने साथ मुहम्मद को ले जाओ।"

नबी (सल्ल०) की यह बात सुनकर अनसार इतना रोए कि उनकी दाढ़ियाँ भीग गईं। वे नौजवान जिन्होंने ऐसी बात कही थी उनकी समझ में भी आ गया कि नबी (सल्ल०) से बढ़कर कोई दौलत और नेमत नहीं हो सकती।

सारा अरब मुसलमान हो गया

मक्का पर इस्लाम का झण्डा लहराने और हुनैन में मुसलमानों की जीत से सारे अरब पर इस्लाम की धाक बैठ गई। अरब के तमाम क़बीलों ने इस्लाम की ताक़त के सामने सिर झुका दिया। मक्का पर जीत के अगले साल यानी नौ हिजरी में अरब क़बीलों ने ज़्यादा तादाद में अपने नुमाइन्दे नबी (सल्ल०) के पास मदीना भेजे कि उस साल का नाम ही "आमुल-वुफ़ूद" यानी नुमाइन्दों (प्रतिनिधियों) का साल पड़ गया। ये नुमाइन्दे अपने क़बीलों की तरफ़ से इस्लाम क़बूल करने, आप (सल्ल०) की ज़ियारत (दर्शन) और बैअत (प्रतिज्ञा) करने या अपनी फ़रमाँबरदारी ज़ाहिर करने के लिए हाज़िर हुए। यहूदी और कुछ दूसरे बदनसीब लोग जो इस्लाम की दौलत न पा सके अब उनके लिए भी नबी (सल्ल०) की मातहती क़बूल करने के सिवा दूसरा कोई रास्ता न था।

इस तरह सारे अरब पर नबी (सल्ल०) की हुकूमत क़ायम हो गई। आप (सल्ल०) ने हर इलाक़े में अपने हाकिम मुक़र्रर कर दिए और इस्लाम के अहकाम पूरी ताक़त से जारी कर दिए गए और हर तरह की बुराइयों का ख़ातिमा कर दिया गया।

नबी (सल्ल०) ने कभी बादशाहों का तरीक़ा नहीं अपनाया। हमेशा सादगी से रहे। न आप (सल्ल०) ने कोई महल बनवाया, न कभी ताज पहना, न तख़्त पर बैठे जिस पर बादशाह लोग बैठते हैं। न नौकरों और मुहाफ़िज़ों की कोई भीड़ नबी (सल्ल०) के पास रहती थी।

हमारे रसूले-पाक (सल्ल०) कैसे थे? इसका हाल आप इस किताब में आगे पढ़ेंगे।

तबूक की लड़ाई
(9 हिजरी)

मक्का की फ़त्ह के आठ-नौ महीने बाद सीरिया के कुछ सौदागर मदीना आए। उन्होंने बताया कि रोम का बादशाह बड़ी तैयारियों के साथ अरब पर चढ़ाई करनेवाला है और सीरिया की सीमा पर बसे ईसाइयों के क़बीले भी लड़ाई की तैयारियाँ कर रहे हैं।

नबी (सल्ल॰) को यह ख़बर मिली तो आप (सल्ल॰) ने फ़ैसला किया कि रोम के बादशाह को अरब की सीमा के अन्दर पाँव न रखने दिया जाए और आगे बढ़कर सीरिया की सीमा पर उसका मुक़ाबला किया जाए। इसलिए नबी (सल्ल॰) ने अरब के तमाम क़बीलों को ख़बर भेजी कि रोम के क़ैसर (राजा का लक़ब) के मुक़ाबले के लिए तुरन्त मदीना पहुँच जाएँ। आप (सल्ल॰) ने मदीना के मुसलमानों को भी तैयारी का हुक्म दिया।

उस साल बारिश न होने की वजह से बड़ी तेज़ गर्मी पड़ रही थी। फ़सलें पकने के क़रीब थीं और डर था कि अगर वक़्त पर कटाई न की गई तो अकाल पड़ जाएगा। मुनाफ़िक़ भी मुसलमानों को बाहर निकलने से रोक रहे थे। लेकिन अल्लाह के नेक बन्दों ने उनकी बात न सुनी और अपनी-अपनी हिम्मत के मुताबिक़ लड़ाई का सामान जुटाने लगे। जब बाहर के क़बीले भी मदीना पहुँच गए तो बहुत बड़ा लश्कर जमा हो गया। इतनी बड़ी फ़ौज के लिए सामान, हथियारों और सवारियों के लिए बहुत-से रुपयों की ज़रूरत थी। नबी (सल्ल॰) ने मुसलमानों को अल्लाह की राह में दिल खोलकर माल और सामान देने पर उभारा। उस मुश्किल वक़्त में रसूल (सल्ल॰) के साथियों ने अपने माल की ऐसी-ऐसी क़ुरबानियाँ दीं कि इतिहास के पन्नों में उनकी मिसालें नहीं मिलतीं।

हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) अपने घर का सारा सामान उठा लाए। हज़रत उमर (रज़ि॰) ने घर का आधा सामान दे दिया। हज़रत उसमान (रज़ि॰) ने सैकड़ों ऊँट पालान के साथ दे दिए। रसूल (सल्ल॰) के दूसरे साथी भी

जितना ज़्यादा से ज़्यादा रुपया दे सकते थे ले आए। औरतों ने अपने गहने उतार कर दे दिए।

जब तैयारियाँ हो गईं तो नबी (सल्ल॰) ने रजब, नौ (9) हिजरी में तीस हज़ार (30,000) मुसलमानों की फ़ौज लेकर मदीना से कूच किया। मौसम बहुत गर्म और रास्ता बहुत जटिल था। कहीं-कहीं रेत के ऐसे मैदान थे जहाँ ज़हरीली हवाएँ चलती थीं। आप (सल्ल॰) उन मैदानों से गुज़रते और प्यास की मुसीबतें झेलते तबूक पहुँचे जो मदीना से चौदह (14) मंज़िल की दूरी पर है। नबी (सल्ल॰) के मुक़ाबले पर दुश्मन की कोई फ़ौज नहीं आई लेकिन आस-पास के ईसाई सरदार आप (सल्ल॰) के पास आए और टैक्स देने का वचन देकर आपकी मातहती क़बूल कर ली।

पड़ोस की एक रियासत 'दूमतल-जन्दल' का अरब सरदार उकैदिर रोम के क़ैसर के मातहत था। नबी (सल्ल॰) ने हज़रत ख़ालिद-बिन-वलीद (रज़ि॰) को चार सौ सवार (400) देकर उसके मुक़ाबले के लिए भेजा। उन्होंने उसे हरा दिया और क़ैद करके अपने साथ ले आए। आप (सल्ल॰) ने उस सरदार को कुछ शर्तों पर माफ़ी दे दी। बीस दिन तबूक में रुकने के बाद नबी (सल्ल॰) मदीना तशरीफ़ ले आए।

नबी (सल्ल॰) के तबूक जाने से पहले कुछ लोगों ने मदीना में एक मस्जिद बनाई थी। आप (सल्ल॰) वापस आए तो पता चला कि मस्जिद बनानेवाले मुनाफ़िक़ हैं और उन्होंने यह काम मुसलमानों में फूट डालने के लिए किया है। नबी (सल्ल॰) के हुक्म से वह मस्जिद, जो मस्जिदे-ज़िरार के नाम से मशहूर है, गिरा दी गई।

मदीना के तीन मुसलमान काब-बिन-मालिक (रज़ि॰), मुरारा-बिन-रबीअ (रज़ि॰) और हिलाल-बिन-उमैया (रज़ि॰) सुस्ती की वजह से इस लड़ाई पर न जा सके थे। आप (सल्ल॰) ने उनको यह सज़ा दिया कि दूसरे तमाम मुसलमानों को उनसे मिलने-जुलने और बातचीत करने से रोक दिया। वे पचास (50) दिनों तक तौबा-इस्तिग़फ़ार (अल्लाह से अपनी ग़लती की माफ़ी माँगना) करते रहे। आख़िर अल्लाह ने उनकी तौबा क़बूल कर ली और उनकी सज़ा ख़त्म हो गई।

हज्जे-अकबर

(9 हिजरी)

तबूक से वापसी पर हज का मौसम आया तो नबी (सल्ल॰) ने तीन सौ (300) मुसलमानों का एक क़ाफ़िला हज के लिए मक्का भेजा। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) को आप (सल्ल॰) ने क़ाफ़िले का सरदार मुक़र्रर किया। कुछ दूसरी ज़िम्मेदारियाँ आप (सल्ल॰) ने हज़रत अली (रज़ि॰), हज़रत साद-बिन-अबी-वक़्क़ास (रज़ि॰), हज़रत जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि॰) और हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) के सिपुर्द कीं।

हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) ने लोगों को हज का सही तरीक़ा बताया और सिखाया और सबने उसी तरीक़े के मुताबिक़ हज किया। क़ुरबानी के दिन हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) ने ख़ुत्बा पढ़ा। उसके बाद हज़रत अली (रज़ि॰) खड़े हुए और उन्होंने सूरा तौबा की चालीस (40) आयतें पढ़ीं जिनमें इस्लाम-दुश्मनों से हर क़िस्म का सम्बन्ध तोड़ने का हुक्म दिया गया है, फिर एलान किया कि अब कोई इस्लाम-दुश्मन काबा में दाख़िल नहीं हो सकेगा और न कोई नंगा होकर हज कर सकेगा।

क़ुरआन में इस हज को हज्जे-अकबर, यानी बड़ा हज कहा गया है क्योंकि सदियों के बाद यह हज उस तरह किया गया जिस तरह इबराहीम (अलैहि॰) किया करते थे।

आख़िरी हज

(10 हिजरी)

हिजरत के दसवें साल ज़ी-क़ादा के महीने में नबी (सल्ल॰) ने एलान फ़रमाया कि इस साल मैं हज को जा रहा हूँ। इस एलान को सुनते ही मुसलमान चारों तरफ़ से मदीना पहुँचने लगे। आप (सल्ल॰) छब्बीस (26) ज़ी-क़ादा को हज़ारों मुसलमानों के साथ मदीना से चले और वहाँ से छः (6) मील दूर 'ज़ुल-हुलैफ़ा' नाम के मक़ाम पर रात गुज़ारी। दूसरे दिन नहाकर हज का लिबास पहना जिसे एहराम बाँधना कहते हैं। फिर नबी (सल्ल॰) ने ऊँटनी पर सवार होकर ऊँची आवाज़ से ये शब्द कहे—

"ऐ अल्लाह! हम तेरे सामने हाज़िर हैं, हाज़िर हैं। ऐ अल्लाह! तेरा कोई साझी नहीं। सारी तारीफें तेरे लिए हैं, मुल्क तेरा है, नेमतें तेरी हैं, कोई तेरा साझी नहीं है।"

आप (सल्ल॰) के साथ दूसरे सब लोग भी यही दुहराते और आस-पास के पहाड़ गूँज उठते।

रास्ते में और लोग भी नबी (सल्ल॰) के क़ाफ़िले में मिलते जाते थे। मक्का तक पहुँचते-पहुँचते यह हाल था कि जिधर नज़र उठती थी आदमी ही आदमी दिखाई देते थे।

नवें दिन ज़िल-हिज्जा की पाँच (5) तारीख़ को नबी (सल्ल॰) मक्का में दाख़िल हुए। काबा पर नज़र पड़ी तो ऊँट से उतर पड़े और फ़रमाया—

"ऐ अल्लाह इस घर को इज़्ज़त और बुज़ुर्गी दे।"

फिर मक़ामे इबराहीम में दो रकअत नमाज़ पढ़ी और सफ़ा की पहाड़ी पर चढ़कर फ़रमाया—

"अल्लाह के सिवा कोई इबादत के क़ाबिल नहीं। उसका कोई साझी नहीं, उसी की बादशाही है। उसी के लिए सब तारीफ़ें हैं, वही मारता है, वही ज़िन्दा करता है। वह हर चीज़ पर क़ुदरत रखता है। उसके सिवा कोई पूजने के क़ाबिल नहीं। उसने अपना वादा पूरा

किया, अपने बन्दे की मदद की और सारे जत्थों को तोड़ दिया।"

आठ ज़िल-हिज्जा को नबी (सल्ल॰) सारे मुसलमानों के साथ मिना में ठहरे। अगले दिन जुमा नौ ज़िल-हिज्जा को फ़ज्र की नमाज़ पढ़कर सारे मुसलमान मिना से चलकर अरफ़ात के मैदान में जमा हुए। लगभग डेढ़ लाख लोग जमा थे। दोपहर ढलने के बाद नबी (सल्ल॰) ने ऊँटनी पर सवार होकर हज का वह तारीख़ी ख़ुत्बा दिया जिसका एक-एक शब्द क़ियामत तक इनसानों को हिदायत और भलाई का रास्ता दिखाता रहेगा। इस ख़ुत्बे में दूसरी बहुत-सी बातें के साथ-साथ नबी (सल्ल॰) ने यह भी फ़रमाया—

"ऐ लोगो! मेरी बातें ध्यान से सुनो, शायद मैं इस जगह फिर कभी तुमसे न मिल सकूँ।

लोगो! जिस तरह तुम इस दिन, इस महीने और इस मक़ाम की इज़्ज़त करते हो, उसी तरह एक-दूसरे के जान-माल और आबरू की इज़्ज़त करो और उसे अपने ऊपर हराम समझो। अल्लाह तुम्हारे हर एक काम का हिसाब लेगा। ख़बरदार! मेरे बाद सच्चाई के रास्ते से भटक न जाना कि एक-दूसरे का ख़ून बहाने लगो। औरतों के साथ नर्मी और मुहब्बत से पेश आना। गुलामों के साथ अच्छा बर्ताव करना। जो ख़ुद खाओ वही उनको खिलाना, जो ख़ुद पहनो वही उन्हें पहनाना। उनसे कोई भूल हो जाए तो माफ़ कर देना।

हर मुसलमान दूसरे मुसलमान का भाई है और सारे मुसलमान भाई-भाई हैं। याद रखो! अरब के किसी रहनेवाले को अजम (ग़ैर-अरब) के किसी रहनेवाले पर और अजम के किसी रहनेवाले को अरब के किसी रहनेवाले पर, किसी गोरे को किसी काले पर, किसी काले को किसी गोरे पर कोई बड़ाई हासिल नहीं है। तुम सब आदम की औलाद हो और आदम मिट्टी से बने थे। तुममें ज़्यादा इज़्ज़त-वाला वही है जो अल्लाह से ज़्यादा डरनेवाला और परहेज़गार है।

जाहिलियत की सारी रस्मों को मेरे ज़रिए से मिटा दिया गया है। वे सारे ख़ून जो जाहिलियत के दिनों में हुए उनका बदला ख़त्म किया

जाता है। सबसे पहले मैं अपने ख़ानदान के क़त्ल होनेवाले रबीआ-बिन-हारिस का ख़ून माफ़ करता हूँ।

और आज से सारे सूदी लेन-देन ख़त्म किए जाते हैं। मेरे ख़ानदान को लोगों से जो सूद लेना है सबसे पहले मैं उसको छोड़ता हूँ।

ऐ लोगो! मैं तुम्हारे पास अल्लाह की किताब और अपनी सुन्नत छोड़े जाता हूँ। अगर तुम उसपर अमल करोगे तो कभी नहीं भटकोगे।

लोगो! जो काम करो सच्चे दिल से करो, मुसलमानों की भलाई सोचते रहो और आपस में मिल-जुलकर रहो।"

खुत्बा ख़त्म हुआ तो नबी (सल्ल॰) ने वहाँ जमा लोगों से पूछा, "अल्लाह तुमसे मेरे बारे में पूछेगा तो तुम क्या जवाब दोगे?"

सारे लोग पुकार उठे, "हम कहेंगे कि आपने अल्लाह का पैग़ाम हम तक पहुँचा दिया और अपना फ़र्ज़ अदा कर दिया।" यह सुनकर नबी (सल्ल॰) ने आसमान की तरफ़ उँगुली उठाई और तीन बार फ़रमाया—

"ऐ अल्लाह, गवाह रहना! ऐ अल्लाह, गवाह रहना! ऐ अल्लाह, गवाह रहना!"

उस वक़्त अल्लाह का यह हुक्म उतरा—

"(ऐ रसूल) आज मैंने तुम्हारे लिए तुम्हारे दीन को पूरा कर दिया और अपनी नेमत तुम पर पूरी कर दी और तुम्हारे लिए दीने-इस्लाम को पसन्द किया।" (क़ुरआन, सूरा-5 माइदा, आयत-3)

फिर नबी (सल्ल॰) ने लोगों से फ़रमाया—

"जो लोग इस वक़्त मौजूद हैं वे उनको मेरा पैग़ाम पहुँचा दें जो मौजूद नहीं।"

उसके बाद आप (सल्ल॰) ने हज की बाक़ी शर्तें पूरी कीं और मुहाजिरों और अनसार के साथ वापस मदीना आ गए। नबी (सल्ल॰) का यह आख़िरी हज था। इसे हिज्जतुल-वदा कहते हैं।

नबी (सल्ल॰) की वफ़ात

हिज्जतुल-वदा से वापसी के बाद, हिजरत का ग्यारहवाँ (11) साल था, सफ़र के महीने की अठारह (18) या उन्नीस (19) तारीख़ थी कि नबी (सल्ल॰) आधी रात के वक़्त मदीना के क़ब्रिस्तान जन्नतुल-बक़ीअ में तशरीफ़ ले गए और वहाँ पर दफ़न मुसलमानों के लिए दुआ की। वापस घर आए तो आप (सल्ल॰) को बुख़ार हो गया। बुख़ार हुए पाँच दिन हो गए तो नबी (सल्ल॰) ने दूसरी सभी बीवियों से इजाज़त लेकर हज़रत आइशा (रज़ि॰) के हुजरे में रहने लगे।

बीमारी की हालत में भी नबी (सल्ल॰) पाँचों वक़्त मस्जिद में नमाज़ पढ़ाने तशरीफ़ लाते रहे। जब कमज़ोरी बहुत बढ़ गई तो हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) को नमाज़ पढ़ाने का हुक्म दिया। वे कई दिनों तक नमाज़ पढ़ाते रहे। एक दिन हालत में कुछ सुधार हुआ तो हज़रत अब्बास (रज़ि॰) और हज़रत अली (रज़ि॰) के सहारे आप (सल्ल॰) मस्जिद में आए। उस वक़्त हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) नमाज़ पढ़ा रहे थे, आहट पाकर उन्होंने पीछे हटना चाहा लेकिन नबी (सल्ल॰) ने इशारे से रोक दिया। फिर उनके पहलू में बैठकर नमाज़ पढ़ाई। नमाज़ के बाद आप (सल्ल॰) ने एक छोटा-सा ख़ुत्बा दिया, जिसमें फ़रमाया—

> "अल्लाह ने अपने एक बन्दे को इख़्तियार दिया कि वह चाहे तो दुनिया की नेमतों को क़बूल करे और चाहे तो अल्लाह के पास जाकर जो नेमतें मिलनेवाली हैं उनको क़बूल करे। उस बन्दे ने अल्लाह के पास जाकर मिलनेवाली नेमतों को क़बूल किया। देखो, मेरा नाम लेकर किसी चीज़ को हलाल या हराम न कहना। मैंने वही चीज़ हलाल की है जो अल्लाह ने हलाल की है और वही हराम की है जो अल्लाह ने हराम की है। मेरे बाद आम मुसलमान बढ़ते जाएँगे लेकिन अनसार बहुत कम रह जाएँगे। ऐ मुहाजिरो! उनके साथ अच्छा बर्ताव करना। वे लोग शुरू से लेकर अब तक मेरे मददगार रहे हैं। मेरे ख़ानदान की इज़्ज़त का भी ख़याल रखना।"

इसके बाद नबी (सल्ल॰) हुजरे में तशरीफ़ ले गए। बीमारी की हालत में एक दिन फ़रमाया, "यहूदियों और ईसाइयों पर ख़ुदा की मार हो कि उन्होंने अपने पैग़म्बरों की क़ब्रों को इबादत का घर बना लिया।"

एक दिन लोगों से फ़रमाया कि "अगर मैंने किसी से क़र्ज़ लिया हो, अगर मैंने किसी की जान, माल या इज़्ज़त को सदमा पहुँचाया हो तो मेरी जान, माल और इज़्ज़त हाज़िर है, इसी दुनिया में मुझसे बदला ले लो।" सारे लोग चुप रहे लेकिन एक आदमी उठकर बोला कि मेरे इतने दिरहम आप पर क़र्ज़ हैं। नबी (सल्ल॰) ने तुरन्त यह क़र्ज़ अदा कर दिया।

बीमारी कभी घटती कभी बढ़ती रही। इन्तिक़ाल के दिन सुबह के वक़्त सुकून था। नबी (सल्ल॰) ने हुजरे का परदा उठाकर देखा तो लोग फ़ज्र की नमाज़ के लिए सफ़ों में खड़े थे। आप (सल्ल॰) बहुत ख़ुश हुए। लोगों ने आहट पाकर समझा कि आप (सल्ल॰) मस्जिद में आना चाहते हैं। वे ख़ुशी से बेताब होने लगे लेकिन आप (सल्ल॰) ने उनको नमाज़ पढ़ने का इशारा किया और हुजरे का परदा गिरा दिया।

ज्यों-ज्यों दिन चढ़ता गया नबी (सल्ल॰) पर बेहोशी का असर होने लगा। तीसरे पहर बेचैनी बहुत बढ़ गई। उस वक़्त लोगों ने आप (सल्ल॰) को यह फ़रमाते सुना, "नमाज़! नमाज़! गुलामों से अच्छा बर्ताव।" इसके बाद आप (सल्ल॰) ने हाथ की उँगुली उठाई और तीन बार फ़रमाया, "बस, अब सबसे बड़े साथी के पास" और फिर नबी (सल्ल॰) की पाक रूह (पवित्र आत्मा) सबसे बड़े साथी "अल्लाह" के पास चली गई। यह सोमवार का दिन और रबीउल-अव्वल, सन ग्यारह (11) हिजरी की बारह (12) तारीख़ थी। कुछ किताबों में उस दिन रबीउल-अव्वल की पहली तारीख़ बताई गई है। उस वक़्त नबी (सल्ल॰) की मुबारक उम्र तिरेसठ (63) साल थी।

लोगों में आप (सल्ल॰) के इन्तिक़ाल की ख़बर फैली तो उनको इतन दुख हुआ कि उसे बयान नहीं किया जा सकता।

मंगल के दिन नबी (सल्ल॰) के क़रीबी रिश्तेदारों और कुछ प्यारे साथिय ने आप (सल्ल॰) को नहलाया और तीन सफ़ेद कपड़ों का कफ़न पहनाया

फिर फ़ैसला हुआ कि हज़रत आइशा (रज़ि॰) के हुजरे में ही जहाँ आप (सल्ल॰) का इन्तिक़ाल हुआ था, आप (सल्ल॰) की क़ब्र बनाई जाए।

वहीं क़ब्र की खुदाई हुई। जब जनाज़ा तैयार हो गया तो पहले मर्दों, फिर औरतों और फिर बच्चों ने बारी-बारी हुजरे के अन्दर जाकर नमाज़ पढ़ी। बुध की रात में आप (सल्ल॰) के पाक जिस्म को क़ब्र में उतारा गया। आप (सल्ल॰) की मुबारक क़ब्र को रौज़ाए-नबवी कहा जाता है।

नबी (सल्ल०) की पाक बीवियाँ

हमारे नबी (सल्ल०) की पाक बीवियाँ उम्महातुल-मोमिनीन (सारी उम्मत की माएँ) हैं। उनके नाम और मुख़्तसर हालात ये हैं–

1. हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) : ये क़ुरैश के ख़ानदान बनू-असद के सरदार खुवैलिद की बेटी थीं। ये आप (सल्ल०) की सबसे पहली बीवी थीं। ये आप (सल्ल०) पर सबसे पहले ईमान लाईं और आख़िर वक़्त तक हर तरह से आप (सल्ल०) की सेवा करती रहीं। नुबूवत के दसवें (10) साल इनका इन्तिक़ाल हुआ।

2. हज़रत सौदा-बिन्ते-ज़मआ (रज़ि०) : ये क़ुरैश के ख़ानदान बनू-आमिर से थीं। इनके पहले शौहर का इन्तिक़ाल हो गया तो नबी (सल्ल०) ने हज़रत ख़दीजा (रज़ि०) के इन्तिक़ाल के बाद इनसे निकाह कर लिया। इन्होंने शुरू में ही इस्लाम क़बूल कर लिया था। इनका इन्तिक़ाल बाइस (22) हिजरी में हुआ।

3. हज़रत आइशा (रज़ि०) : ये अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि०) की बेटी थीं। हिजरत से कुछ पहले निकाह हुआ और हिजरत के बाद विदाई (रुख़्सती) हुई। नबी (सल्ल०) को इनसे बहुत मुहब्बत थी। ये बड़ी आलिमा (विद्वान) थीं। इनका इन्तिक़ाल अठावन (58) हिजरी में हुआ।

4. हज़रत हफ़्सा (रज़ि०) : ये हज़रत उमर फ़ारूक़ (रज़ि०) की बेटी थीं। पहले शौहर के इन्तिक़ाल के बाद आप (सल्ल०) के निकाह में आईं। इनका इन्तिक़ाल पैंतालीस (45) हिजरी में हुआ।

5. हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-ख़ुज़ैमा (रज़ि०) : इनके पहले शौहर उहुद की लड़ाई में शहीद हो गए थे। फिर ये नबी (सल्ल०) के निकाह में आईं। बहुत सख़ी (दानशील) थीं। हमेशा ग़रीबों और बेसहारा लोगों को खाना खिलाया करती थीं। इसलिए ये उम्मुल-मसाकीन (बेसहारों की माँ) के लक़ब से मशहूर हो गई थीं। नबी (सल्ल०) से निकाह के दो-तीन महीने के बाद ही इनका इन्तिक़ाल हो गया।

6. हज़रत-उम्मे-सलमा (रज़ि॰) : ये अबू-उमैया मख़्ज़ूमी की बेटी थीं जो सख़ावत (दानशीलता) में बहुत मशहूर थे। पहले शौहर हज़रत अबू-सलमा (रज़ि॰) के इन्तिक़ाल के बाद नबी (सल्ल॰) के निकाह में आईं। इनका इन्तिक़ाल तरेसठ (63) हिजरी में हुआ।

7. हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-जहश (रज़ि॰) : ये नबी (सल्ल॰) की फुफेरी बहन थीं। इनके पहले शौहर हज़रत ज़ैद-बिन-हारिसा (रज़ि॰) ने इनको तलाक़ दे देया तो आप (सल्ल॰) ने इनसे निकाह कर लिया। ये बहुत इबादत करनेवाली और बड़ी दानी थीं। इनका इन्तिक़ाल बीस (20) हिजरी में हुआ।

8. हज़रत जुवैरिया-बिन्ते-हारिस (रज़ि॰) : ये बनू-मुस्तलिक़ के सरदार हारिस की बेटी थीं। जंग में क़ैदी बनकर आईं थीं। नबी (सल्ल॰) से निकाह हुआ तो इनके क़बीले को आज़ाद कर दिया गया। इनके बाप हारिस ने भी इस्लाम क़बूल कर लिया। हज़रत जुवैरिया (रज़ि॰) का इन्तिक़ाल पचास (50) हिजरी में हुआ।

9. हज़रत-उम्मे-हबीबा (रज़ि॰) : ये क़ुरैश के ख़ानदान बनू-उमैया के सरदार अबू-सुफ़ियान (रज़ि॰) की बेटी थीं। इन्होंने शुरू ही में इस्लाम क़बूल कर लिया था और अपने पहले शौहर उबैदुल्लाह-बिन-जहश के साथ हिजरत करके हबशा चली गई थीं। वहाँ उबैदुल्लाह ईसाई हो गए मगर हज़रत उम्मे-हबीबा (रज़ि॰) इस्लाम पर डटी रहीं। कुछ वक़्त के बाद उबैदुल्लाह का इन्तिक़ाल हो गया। उसके बाद हबशा के बादशाह नज्जाशी ने इनका निकाह रसूल (सल्ल॰) से करा दिया। ये सात (7) हिजरी के शुरू में हबशा से मदीना आईं। इनका इन्तिक़ाल चव्वालीस (44) हिजरी में हुआ।

10. हज़रत सफ़िया-बिन्ते-हुय्य (रज़ि॰) : हज़रत सफ़िया (रज़ि॰) का बाप हुय्य-बिन-अख़तब यहूदियों के क़बीला बनू-नज़ीर का सरदार था। ख़ैबर की लड़ाई में इनके बाप और पहले शौहर किनाना मारे गए। उसके बाद ये आप (सल्ल॰) के निकाह में आईं। इनका इन्तिक़ाल पचास (50) हिजरी में हुआ।

11. हज़रत मैमूना-बिन्ते-हारिस (रज़ि॰) : पहले शौहर अबू-रुहम-बिन-अब्दुल-उज़्ज़ा के इन्तिक़ाल के बाद सात (7) हिजरी में नबी (सल्ल॰) के

निकाह में आईं। ये बहुत परहेज़गार थीं। इनका इन्तिक़ाल इकावन (51) हिजरी में हुआ।

12. हज़रत मारिया-क़िबतीया (रज़ि॰) : मिस्र के बादशाह ने छः (6) हिजरी में इनको नबी (सल्ल॰) की ख़िदमत में भेजा था। ये पहले ईसाई थीं। मदीना आते हुए रास्ते में मुसलमान हो गई थीं। नबी (सल्ल॰) ने इन्हें अपने 'हरम' में दाख़िल कर लिया। इनका इन्तिक़ाल सोलह (16) हिजरी में हुआ।

नबी (सल्ल॰) के इन्तिक़ाल के वक़्त हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) और हज़रत ज़ैनब-बिन्ते-खुज़ैमा (रज़ि॰) के सिवा आप (सल्ल॰) की सभी बीवियाँ ज़िन्दा थीं। आप (सल्ल॰) के बाद वे दुनिया को दीन की तालीम से माला-माल करती रहीं।

नबी (सल्ल॰) की औलाद

हमारे नबी (सल्ल॰) को अल्लाह ने हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰) से दो (2) बेटे और चार (4) बेटियाँ दीं। उन सबके नाम ये हैं–

बेटे

1. **क़ासिम :** नबी (सल्ल॰) की कुन्नियत 'अबुल-क़ासिम' क़ासिम के नाम से ही थी। क़ासिम का एक साल पाँच महीने की उम्र में इन्तिक़ाल हो गया।
2. **अब्दुल्लाह :** अब्दुल्लाह का लक़ब ताहिर और तय्यब था। इनका भी बहुत छोटी उम्र में इन्तिक़ाल हो गया।

बेटियाँ

1. **हज़रत ज़ैनब (रज़ि॰) :** इनकी शादी हज़रत अबुल-आस (रज़ि॰) से हुई। हज़रत ज़ैनब (रज़ि॰) का इन्तिक़ाल आठ (8) हिजरी में हुआ।
2. **हज़रत रुक़ैया (रज़ि॰) :** हज़रत रुक़ैया (रज़ि॰) की शादी हज़रत उसमान (रज़ि॰) से हुई थी। इनका इन्तिक़ाल दो (2) हिजरी में हुआ।
3. **हज़रत उम्मे-कुलसूम (रज़ि॰) :** हज़रत रुक़ैया (रज़ि॰) के इन्तिक़ाल के बाद इनकी भी शादी हज़रत उसमान (रज़ि॰) से हुई। इनका इन्तिक़ाल नौ (9) हिजरी में हुआ।
4. **हज़रत फ़ातिमा-ज़हरा (रज़ि॰) :** हज़रत फ़ातिमा (रज़ि॰) की शादी हज़रत अली (रज़ि॰) से हुई। हज़रत हसन (रज़ि॰) और हज़रत हुसैन (रज़ि॰) दोनों हज़रत फ़ातिमा (रज़ि॰) ही के बेटे थे। नबी (सल्ल॰) के इन्तिक़ाल के कुछ महीने बाद हज़रत फ़ातिमा (रज़ि॰) का इन्तिक़ाल हुआ।

हज़रत मारिया-क़िब्तीया (रज़ि॰) से भी अल्लाह ने नबी (सल्ल॰) को एक बेटा दिया। उनका नाम इबराहीम था। उनका भी बहुत छोटी उम्र में इन्तिक़ाल हो गया।

अल्लाह की आख़िरी किताब

अल्लाह की किताबों में अल्लाह की वे बातें होती हैं जिसे अल्लाह लोगो की हिदायत और नसीहत के लिए अपने फ़रिश्ते के ज़रिए अपने रसूलों से कहता है। हमारे रसूल (सल्ल॰) से पहले आनेवाले रसूलों पर जो किताबे उतरीं, उनमें तौरात, ज़बूर और इनजील बहुत मशहूर हैं।

तौरात हज़रत मूसा (अलैहि॰) पर, ज़बूर हज़रत दाऊद (अलैहि॰) पर और इनजील हज़रत ईसा (अलैहि॰) पर उतरी। इनको आसमानी किताबें भी कहा जाता है। सबसे आख़िर में रसूले-पाक (सल्ल॰) पर जो किताब उतरी उसका नाम 'क़ुरआन' है। यह किताब थोड़ी-थोड़ी करके तेईस (23) सालों में उतरी। हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) अल्लाह के आख़िरी रसूल और नबी हैं क़ुरआन भी अल्लाह की सबसे आख़िरी किताब है। इनसानों को सीधा रास्त दिखाने के लिए जिन बातों की ज़रूरत थी वे सब-की-सब क़ुरआन में अल्लाह ने बयान कर दी हैं। अल्लाह की यह आख़िरी किताब क़ियामत तक इनसानों को भलाई की बातें बताती और बुरे कामों से रोकती रहेगी क़ुरआन से पहले जो आसमानी किताबें उतरीं उनमें लोगों ने अपनी तरफ़ से बहुत-सी बातें घटा-बढ़ा दीं हैं। मगर क़ुरआन का एक शब्द भी नहीं बदला। जैसा वह रसूले-पाक (सल्ल॰) पर उतरा, वैसे-का-वैसा ही अब तक मौजूद है और हमेशा ऐसा ही रहेगा।

अल्लाह ने क़ुरआन में वादा किया है कि मैं ख़ुद इसकी हिफ़ाज़त करूँगा। क़ुरआन के सिवा अल्लाह की कोई किताब ऐसी नहीं है जो सारी-की-सारी किसी ने याद कर ली हो। लेकिन जब से क़ुरआन उतारा गया इसको हर ज़माने में लाखों मुसलमान पूरा याद करते हैं और आज भी क़ुरआन को पूरा याद करनेवाले लाखों मुसलमान मौजूद हैं। जो क़ुरआन को पूरा याद करते हैं उन्हें 'हाफ़िज़' कहा जाता है। अल्लाह ने क़ुरआन में साफ़-साफ़ कहा है कि दुनिया का कोई आदमी इसकी एक सूरा जैसी भी कोई सूरा नहीं बना सकता। क़ुरआन को पढ़े बिना और उसपर अमल किए बिना कोई आदमी सच्चा मुसलमान नहीं बन सकता।

इस्लाम के पाँच सुतून

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया है कि इस्लाम की बुनियाद पाँच सुतूनों पर क़ायम की गई है—

"एक, इस बात की गवाही देना कि अल्लाह के सिवा कोई इबादत और बन्दगी के लायक़ नहीं और मुहम्मद (सल्ल०) अल्लाह के रसूल हैं। दूसरे नमाज़ क़ायम करना, तीसरे ज़कात अदा करना, चौथे हज करना और पाँचवें रोज़े रखना।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

इस हदीस में नबी (सल्ल०) ने इस्लाम की मिसाल एक ऐसी इमारत से दी है जो पाँच सुतूनों पर क़ायम है। ये सुतून वे पाँच बातें हैं जिनका हुक्म अल्लाह ने मुसलमानों को आप (सल्ल०) के ज़रिए से दिया है।

पहली बात यह है कि अल्लाह को एक जानो और उसके सिवा किसी की पूजा-बन्दगी न करो और हज़रत मुहम्मद (सल्ल०) को अल्लाह का बन्दा और अल्लाह का सच्चा रसूल समझो।

दूसरी बात यह है कि पाँच (5) वक़्त की नमाज़ पढ़ो।

तीसरी बात यह है कि साल में एक बार अपने माल की ज़कात दिया करो।

चौथी बात यह है कि अपनी पूरी ज़िन्दगी में कम-से-कम एक बार काबा का 'हज' ज़रूर करो। लेकिन शर्त यह है कि अल्लाह ने तुम्हें इतना माल दिया हो। माँगकर या क़र्ज़ लेकर हज करना फ़र्ज़ नहीं।

पाँचवीं बात यह कि साल भर में एक महीना रमज़ान के रोज़े रखो।

जो आदमी मुसलमान हो और इन पाँचों हुक्मों का पालन न करे वह अल्लाह की नज़र में सच्चा मुसलमान नहीं है, बल्कि बड़ा गुनाहगार और नाफ़रमान है। क़ियामत के दिन अल्लाह उसको सख़्त सज़ा देगा।

दिलो-जाँ से प्यारे हमारे रसूल

दिलो-जाँ से प्यारे हमारे रसूल
खुदा के दुलारे हमारे रसूल
दिलों के सहारे हमारे रसूल
जहाँ भर के प्यारे हमारे रसूल
हमेशा हो उनपर दुरूदो-सलाम
मुहम्मद हमारे नबी का है नाम
कलामों में अफ़ज़ल है उनका कलाम
हम उनकी हैं उम्मत हम उनके ग़ुलाम
ज़बानों पे ज़िक्र उनका है सुबहो-शाम
हमेशा हो उनपर दुरूदो-सलाम।

(नाज़िर)

रसूले-पाक (सल्ल॰) की प्यारी सूरत

रसूले-पाक (सल्ल॰) का क़द बीच का था, न बहुत लम्बा न छोटा। रंग गोरा सुरख़ी लिए हुए और रौशन था। सिर बड़ा और माथा चौड़ा था। नाक पतली, ऊँची, आँखें बड़ी-बड़ी, सुन्दर और काली थीं। अगर सुरमा न भी लगाया होता तो यूँ लगता कि सुरमा लगा हुआ है। पलकें लम्बी और घनी, भवें बारीक और एक-दूसरे से अलग थीं। चेहरा न बिलकुल गोल था न लम्बा बल्कि कुछ लम्बाई लिए हुए था। चेहरे पर ज़्यादा गोश्त न था। दाढ़ी घनी और गर्दन ऊँची थी। सिर के बाल घने थे, न ज़्यादा घुंघराले और न बिलकुल सीधे। आख़िर उम्र तक बिलकुल काले रहे। नबी (सल्ल॰) उनमें अक्सर तेल डालते, कंघी करते और माँग निकालते थे। सिर के बाल कभी आधे कान तक, कभी कान की लौ तक और कभी उससे भी नीचे लम्बे रखते थे।

दाँत बहुत सुन्दर, चमकदार और बारीक थे। कन्धे गोश्त से भरे हुए थे, मोंढों की हड्डियाँ बड़ी थीं, छाती चौड़ी-चकली थी। हथेलियाँ चौड़ी और कलाइयाँ लम्बी थीं। पैरों की एड़ियाँ नाज़ुक और तलुए बीच में से ज़रा ख़ाली थे। मोंढों, कलाइयों और छाती पर बाल थे। छाती और नाभी तक बालों की एक हल्की धारी थी। दोनों कन्धों के बीच कबूतर के अंडे के बराबर उभरा हुआ लाल गोश्त था जिसपर तिल और बाल थे। उसको मुह्रे-नुबूवत (नुबूवत का निशान) कहा जाता था। शरीर गठा हुआ था मगर मोटा न था। जोड़-बन्द बहुत मज़बूत थे। शरीर की खाल बहुत नर्म थी।

रसूले-पाक (सल्ल॰) इतने ख़ूबसूरत थे कि जो देखता, देखता ही रह जाता था। हज़रत अली (रज़ि॰) फ़रमाते हैं कि मैंने रसूल (सल्ल॰) जैसा ख़ूबसूरत न आप (सल्ल॰) से पहले देखा और न बाद में।

हज़रत हिन्द-बिन-अबू-हाला (रज़ि॰) फ़रमाते हैं कि रसूल (सल्ल॰) का चेहरा चौदहवीं रात के चाँद की तरह रौशन और चमकदार था।

हज़रत जाबिर-बिन-समुरा (रज़ि॰) फ़रमाते हैं कि मैंने रसूल (सल्ल॰) को

चाँदनी रात में देखा। आप (सल्ल०) ने लाल धारीवाला लिबास पहना था। मैं कभी चाँद की तरफ़ देखता और कभी आप (सल्ल०) की तरफ़। आप (सल्ल०) मुझको चाँद से बढ़कर ख़ूबसूरत नज़र आते थे।

मशहूर सहाबी हज़रत बराअ-बिन-आज़िब (रज़ि०) से पूछा गया कि क्या रसूल (सल्ल०) का चेहरा सफ़ाई और चमक में तलवार जैसा था? उन्होंने फ़रमाया, "नहीं, बल्कि चाँद जैसा था।"

एक बार एक बूढ़ी सहाबिया हज़रत रुबय्यिअ्-बिन्ते-मुअव्विज़ से एक नौजवान ने कहा, "अम्मा, आप रसूल (सल्ल०) के कुछ नाक-नक़्श (हुलिया) बयान करें।"

उन्होंने फ़रमाया, "ऐ बेटे, अगर तुम रसूल (सल्ल०) को देखते तो यह देखते कि सूरज निकल आया है।"

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि०) फ़रमाते हैं कि मैंने अल्लाह के रसूल (सल्ल०) से ज़्यादा ख़ूबसूरत किसी को नहीं देखा। नबी (सल्ल०) सामने होते तो मालूम होता था कि सूरज चमक रहा है।

रसूल (सल्ल०) का पसीना

नबी (सल्ल०) का पसीना मोती की तरह झलकता था और उसमें से बहुत अच्छी ख़ुशबू आती थी।

रसूल (सल्ल०) की जिस्मानी ताक़त

नबी (सल्ल०) का सिर्फ़ चेहरा ही ख़ूबसूरत न था, बल्कि जिस्मानी ताक़त में भी कोई आप (सल्ल०) का मुक़ाबला नहीं कर सकता था। जवानी में एक बार आप (सल्ल०) ने क़ुरैश के ताक़तवर पहलवान रुकाना से दो बार कुश्ती लड़ी और दोनों बार उसे पछाड़ दिया। रुकाना (रज़ि०) बाद में मुसलमान हो गए।

क़ुरैश का एक और नामी पहलवान अबुल-अशद कलदा-बिन-असद जुमह्ही था। वह ऐसा ताक़तवर था कि गाय के चमड़े पर खड़ा हो जाता और दस-दस आदमी मिलकर उस चमड़े को खींचते लेकिन वह अपनी जगह

से हिलता तक न था। नबी (सल्ल॰) ने उससे कुश्ती लड़ी और उसको कई बार पछाड़ा।

रसूल (सल्ल॰) का हँसना

रसूल (सल्ल॰) के चेहरे पर हमेशा मुस्कराहट रहती थी। कभी हँसते तो खिलखिलाकर न हँसते। हँसते वक़्त दाँतों के बीच से किरणें फूटती मालूम होती थीं।

रसूल (सल्ल॰) की बातचीत

नबी (सल्ल॰) किसी की बात सुनते तो उसकी तरफ़ घूमकर ध्यान से सुनते। सिर्फ़ गर्दन मोड़कर देखने की आदत न थी। रसूल (सल्ल॰) की आवाज़ बुलन्द और मीठी थी। जब बातें करते तो बहुत ठहर-ठहरकर करते। बिना ज़रूरत कभी न बोलते।

रसूल (सल्ल॰) का चलना-फिरना और बैठना

रसूल (सल्ल॰) चलते तो ऐसा मालूम होता था कि ऊँचाई से नीचे की तरफ़ जा रहे हैं। क़दम हल्के लेते और जमाकर रखते थे।

हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) कहते हैं कि रसूल (सल्ल॰) से बढ़कर तेज़-तेज़ चलनेवाला मैंने किसी को नहीं देखा। नबी (सल्ल॰) चलते थे तो यूँ मालूम होता था जैसे ज़मीन आप (सल्ल॰) के लिए लपेट दी जा रही है। हम सब आप (सल्ल॰) के साथ चलकर थक जाते थे।

नबी (सल्ल॰) अक्सर दोनों घुटने खड़े करके और दोनों हाथों से उनको घेरकर बैठते थे। कभी-कभी आलती-पालती मारकर भी बैठते थे।

रसूल (सल्ल॰) का खाना, पीना, पहनना और सोना

रसूल (सल्ल॰) का खाना बहुत सादा होता था। आप (सल्ल॰) सिरका, शहद, हलुआ, ज़ैतून का तेल और कद्दू बड़े शौक़ से खाते थे। घी में पनीर और खजूर डालकर एक खाना पकाया जाता है जिसे 'हैस' कहते हैं। नबी (सल्ल॰) को यह खाना बहुत पसन्द था। बकरी के शाने (दस्त) का गोश्त भी बड़े मज़े से खाते। आमतौर से मोटी रोटी जो बिना छने आटे की होती थी, खाते थे। यह रोटी आमतौर से जौ और कभी-कभी गेहूँ।

नबी (सल्ल॰) के घर में जौ का आटा हाँडी में डालकर आग पर रख दिया जाता था। उसमें ज़ैतून का तेल, ज़ीरा और काली मिर्चें डाल दी जाती। जब पक जाता तो यह खाना आप (सल्ल॰) बड़े शौक़ से खाते।

तरबूज़ को खजूर के साथ मिलाकर खाते थे। कभी-कभी रोटी के साथ खजूर खाते थे। पतली ककड़ियाँ बहुत पसन्द थीं। सत्तू भी खाते थे। दूध कभी शुद्ध और कभी पानी मिलाकर पीते थे। किशमिश, खजूर और अंगूर पानी में भिगो देते, कुछ देर बाद जब पानी मीठा हो जाता तो पी लेते थे।

नबी (सल्ल॰) ने दुंबा, मुर्ग़, ऊँट, बकरी, भेड़, गोर-ख़र ख़रगोश और मछली का गोश्त भी खाया है। प्याज़, लहसन और मूली को उनकी बदबू की वजह से पसन्द नहीं फ़रमाते थे।

ठण्डा पानी पीकर नबी (सल्ल॰) बहुत ख़ुश होते। आमतौर पर बैठकर और तीन साँस में पानी पीते। आप (सल्ल॰) अक्सर लकड़ी के एक प्याले में खाना खाते। छोटी प्लेटों और प्यालियों में कभी खाना नहीं खाया।

किसी खाने को कभी बुरा नहीं कहते थे। अगर पसन्द न होता तो उसे छोड़ देते थे। खाने से पहले बिसमिल्लाह पढ़ते और आख़िर में अल्लाह का शुक्र अदा करते थे। खाने से पहले भी हाथ धोते और खाने के बाद भी। हमेशा दाएँ हाथ से और अपने सामने से खाते थे। इधर-उधर हाथ न मारते

थे। टेक लगाकर कभी न खाते थे। हमेशा तीन उँगलियों से खाते और कुछ भूख बाक़ी रहती तभी खाना छोड़ देते। ठूँस-ठूँसकर खाना नबी (सल्ल॰) को बिलकुल पसन्द नहीं था। आप (सल्ल॰) हमेशा नीचे बैठकर दस्तरख़ान पर खाना खाते थे। रात को भूखा सोने और खाना खाते ही सो जाने से मना फ़रमाया करते थे।

रसूल (सल्ल॰) का लिबास

रसूल (सल्ल॰) अक्सर तहमद और कुर्ता पहनते, ऊपर से धारीदार यमनी चादर ओढ़ लेते। एक-आध बार पाजामा भी पहना है। नबी (सल्ल॰) की पगड़ी जिसे साफ़ा या अमामा कहते हैं, आमतौर पर काले रंग की होती थी। पगड़ी के नीचे टोपी ज़रूर होती थी। आप (सल्ल॰) पगड़ी का शमला दोनों मोंढों के बीच पीछे की तरफ़ लटका लेते और कभी कन्धों पर डाल लेते।

नबी (सल्ल॰) का लिबास सादा और बहुत साफ़-सुथरा होता था। आप (सल्ल॰) ने कभी-कभी क़ीमती लिबास भी पहना है। सफ़ेद रंग का लिबास आप (सल्ल॰) को बहुत पसन्द था। हरा और पीला रंग भी पसन्द फ़रमाते थे। लाल रंग पसन्द नहीं था। आप (सल्ल॰) को ख़ुशबू बहुत पसन्द थी। एक ख़ास क़िस्म की ख़ुशबू हमेशा आप (सल्ल॰) के इस्तेमाल में रहती थी। हज़रत आइशा (रज़ि॰) फ़रमाती हैं कि रसूल (सल्ल॰) के पास कपड़ों का सिर्फ़ एक जोड़ा था और आप (सल्ल॰) का कोई कपड़ा कभी तह करके नहीं रखा गया ।

रसूल (सल्ल॰) का बिस्तर

रसूल (सल्ल॰) बान की चारपाई पर सोते थे, जिससे आप (सल्ल॰) के जिस्म पर बान के निशान पड़ जाते थे। बिस्तर कभी कम्बल का होता था और कभी चमड़े का जिसमें खजूर की छाल या पत्ते भरे होते थे। कभी आप (सल्ल॰) का बिस्तर मामूली कपड़े का होता था जो दोहरा कर दिया जाता था। चटाई और ख़ाली ज़मीन पर भी आप (सल्ल॰) आराम कर लेते थे।

रसूल (सल्ल॰) की नींद

रसूल (सल्ल॰) जब सोने के लिए लेटते तो हमेशा दाएँ करवट लेटते और दायाँ हाथ गाल के नीचे रखकर सोते। कभी सफ़र में ऐसा होता कि आख़िर रात में मंज़िल पर उतरकर आराम फ़रमाते तो दायाँ हाथ ऊँचा करके चेहरा उसपर टिकाकर सोते। नींद में बहुत हल्के ख़र्राटे की आवाज़ आती थी।

रसूल (सल्ल०) के दिन-रात

रसूल (सल्ल०) की आदत थी कि फ़ज्र की नमाज़ पढ़कर मस्जिद में ही आलती-पालती मारकर बैठ जाते। आप (सल्ल०) के प्यारे साथी भी आप (सल्ल०) के आसपास बैठ जाते। नबी (सल्ल०) उनको अच्छी-अच्छी नसीहतें करते, उनकी बातें भी सुनते। अगर कोई अपना ख़ाब बयान करता तो उसका मतलब बताते। अगर ग़नीमत या सदक़ा का माल आ जाता तो उसे भी उसी वक़्त बाँटते थे। उन मजलिसों में पाकीज़ा हँसी-मज़ाक़ की बातें भी होती थीं। जब दिन कुछ चढ़ जाता तो चाश्त की नमाज़ पढ़ते, कभी चार (4) और कभी आठ (8) रकअतें पढ़ते। फिर घर के काम में लग जाते। बकरियों का दूध दूहते। जूता टूट जाता तो अपने हाथ से गाँठ लेते। बाज़ार से सामान ख़रीद लाते। मेहमानों की ख़िदमत करते। दूसरों के काम भी कर देते यहाँ तक कि ज़ुहर की नमाज़ का वक़्त आ जाता। नबी (सल्ल०) लोगों को ज़ुहर की नमाज़ पढ़ाते। फिर अस्र की नमाज़ पढ़ाकर अपनी पाक बीवियों के घर जाते और हर एक से उनका हाल पूछते और उनसे बातचीत करते। उसके बाद मग़रिब की नमाज़ अदा करते, फिर खाना खाते और इशा की नमाज़ के बाद ही जल्द सो जाते। इशा की नमाज़ के बाद आप (सल्ल०) को बातचीत पसन्द नहीं थी।

आधी रात गुज़रने के बाद नबी (सल्ल०) जाग उठते, पहले मिसवाक करते, फिर वुज़ू करके तहज्जुद की नमाज़ पढ़ते यहाँ तक कि फ़ज्र की अज़ान हो जाती। फिर आप (सल्ल०) फ़ज्र की सुन्नतें पढ़कर मस्जिद तशरीफ़ ले जाते।

कभी-कभी नबी (सल्ल०) सारी-सारी रात इबादत करते रहते थे। कई बार ऐसा होता कि नमाज़ में बहुत देर खड़े रहने की वजह से आप (सल्ल०) के पाँव सूज जाते।

लोगों से मुलाक़ात

रसूल (सल्ल॰) किसी से मिलते तो पहले सलाम करते फिर हाथ मिलाते। जब तक दूसरा आप (सल्ल॰) का हाथ न छोड़ता, आप (सल्ल॰) भी न छोड़ते। जो भी आप (सल्ल॰) से मुलाक़ात के लिए आता, आप (सल्ल॰) उससे बड़ी मुहब्बत से मिलते और इ़ज़्ज़त से अच्छी जगह बैठाते।

मुलाक़ात के वक़्त अगर कोई झुककर नबी (सल्ल॰) के कान में कुछ कहता तो आप (सल्ल॰) ध्यान से सुनते और जब तक बात कहनेवाला अपनी बात पूरी न कर लेता, कान उसके मुँह की तरफ़ रखते। जब किसी के घर जाते तो पहले सलाम करते फिर अन्दर आने की इजाज़त माँगते। आप (सल्ल॰) ने तमाम मुसलमानों को भी यही तरीक़ा सिखाया और यह भी फ़रमाया कि घरवाले पूछें, "कौन है?" तो अपना नाम बताया करो, यह न कहो कि "मैं हूँ।"

अगर नबी (सल्ल॰) को कभी छींक आती तो आप (सल्ल॰) चेहरे को हाथ या कपड़े से ढक लेते, जम्हाई (जमाई) लेते वक़्त भी आप (सल्ल॰) ऐसा ही करते थे।

रसूल (सल्ल॰) के अख़लाक़

अख़लाक़ का मतलब है किसी आदमी की आदतें, उसका चाल-चलन। किसी आदमी की बातों और आदतों से ही उसके अख़लाक़ की बुराई या अच्छाई का पता चलता है। इस्लाम में अच्छे अख़लाक़ पर बहुत ज़ोर दिया गया है। क़ुरआन में उन तमाम आदतों और कामों की चर्चा मौजूद है जिनको अल्लाह और रसूल (सल्ल॰) पसन्द करते हैं और ऐसे कामों और आदतों की चर्चा भी की गई है जिनको अल्लाह और रसूल (सल्ल॰) नापसन्द करते हैं।

रसूल (सल्ल॰) के अख़लाक़ सब लोगों से अच्छे थे। आप (सल्ल॰) फ़रमाया करते थे, "तुममें सबसे अच्छा वह है जिसके अख़लाक़ अच्छे हों।"

एक बार किसी ने उम्मुल-मोमिनीन (मुसलमानों की माँ) हज़रत आइशा (रज़ि॰) से पूछा कि रसूल (सल्ल॰) के अख़लाक़ कैसे थे? उन्होंने जवाब दिया, "क्या तुमने क़ुरआन नहीं पढ़ा? जो कुछ क़ुरआन में है वही रसूल (सल्ल॰) के अख़लाक़ थे।"

ख़ुद अल्लाह ने क़ुरआन में रसूल (सल्ल॰) से फ़रमाया है—

"बेशक (ऐ रसूल)! तुम अख़लाक़ के बड़े रुतबे (पद) पर हो।"

(क़ुरआन, सूरा-68 क़लम, आयत-4)

अख़लाक़ की तालीम के दो तरीक़े हैं—

एक तरीक़ा तो यह है कि किसी को बताया जाए कि यह काम अच्छा है और यह काम बुरा है।

दूसरा तरीक़ा यह है कि नमूना बनकर अपने-आपको लोगों के सामने पेश किया जाए।

रसूल (सल्ल॰) ने दोनों तरीक़ों से लोगों को अख़लाक़ की तालीम दी है। जो नसीहतें ज़बानी कीं, उनपर ख़ुद अमल करके दिखाया। इसी लिए अल्लाह ने क़ुरआन में मुसलमानों से फ़रमाया है—

"(ऐ मुसलमानों) बेशक तुम लोगों के लिए अल्लाह के रसूल में एक बेहतरीन नमूना है।" (क़ुरआन, सूरा-33 अहज़ाब, आयत-21)

रसूल (सल्ल॰) में तमाम अच्छे गुण, अच्छी आदतें और भलाइयाँ मौजूद थीं। आप (सल्ल॰) ने हमें ज़िन्दगी के हर मामले में सीधा रास्ता दिखाया है। आप (सल्ल॰) सबसे बढ़कर अल्लाह का हुक्म माननेवाले और उसका शुक्र करनेवाले, नेकियों में सबसे पहले आगे बढ़नेवाले, हर भलाई में आगे-आगे, अपनी बात के सच्चे, वादे के पक्के, अमानत अदा करनेवाले, हर तरह की मुसीबत और सख़्ती को सब्र से झेलनेवाले, अपनी ज़रूरतों से बढ़कर दूसरों की ज़रूरतों का ख़याल रखनेवाले, अपनी ज़बान पर क़ाबू रखनेवाले, लाज और शर्मवाले, गुस्सा आने पर माफ़ कर देनेवाले, बुराई का बदला भलाई से देनेवाले, गरीबों, बेसहारों, यतीमों और बेवाओं की मदद करनेवाले, पड़ोसियों से अच्छा सुलूक करनेवाले, घमंड और तकब्बुर से बचनेवाले, बच्चों से प्यार करनेवाले, अल्लाह के लिए रिश्तेदार, वतन, घर-बार, माल-जायदाद सब कुछ क़ुरबान कर देनेवाले, मेहमानों की ख़ातिरदारी करनेवाले, इल्म (ज्ञान) सीखने पर ज़ोर देनेवाले, भलाई का हुक्म देनेवाले, बुराई से रोकनेवाले, नमाज़ क़ायम करनेवाले, रोज़ा रखनेवाले, हज करनेवाले, ज़कात देनेवाले, अल्लाह के डर से रोनेवाले, मीठी बोली बोलनेवाले और दुश्मन का बहादुरी से मुक़ाबला करनेवाले थे।

इन मामलों में नबी (सल्ल॰) ने हमें जो नमूना दिखाया है उसकी कुछ मिसालें हम अगले पन्नों में पढ़ेंगे।

रसूल (सल्ल॰) हमेशा सच बोलते थे

रसूल (सल्ल॰) हमेशा सच बोलते थे। सारी ज़िन्दगी में आप (सल्ल॰) के मुँह से सच के सिवा कोई बात न निकली। आप (सल्ल॰) से बढ़कर कोई सच्चा न था। इस्लाम-दुश्मनों को भी आप (सल्ल॰) की सच्चाई का यक़ीन था। वे आप (सल्ल॰) को सादिक़ (सच्चा) कहकर पुकारते थे।

जब नबी (सल्ल॰) ने लोगों को इस्लाम की तरफ़ बुलाना शुरू किया तो एक दिन आप (सल्ल॰) ने सफ़ा की पहाड़ी पर चढ़कर मक्कावालों को पुकारा। जब सब जमा हो गए तो फ़रमाया—

> "अगर मैं तुमसे यह कहूँ कि एक बहुत बड़ी फ़ौज इस पहाड़ी के पीछे से तुमपर हमला करने के लिए आ रही है, तो क्या तुम इस बात का यक़ीन कर लोगे?"

इस पर सबने कहा, "बेशक हम यक़ीन कर लेंगे क्योंकि हमने आज तक तुम्हें झूठ बोलते हुए न कभी देखा, न कभी सुना।"

हज़रत अबू-सुफ़ियान (रज़ि॰) इस्लाम क़बूल करने से पहले आप (सल्ल॰) के कट्टर दुश्मन थे। उस ज़माने में वे एक बार सीरिया गए और वहाँ रोम के बादशाह से मुलाक़ात की। बादशाह ने उनसे रसूल (सल्ल॰) के बारे में कई बातें पूछीं। उनमें एक बात यह थी कि "क्या तुमने नबी होने का दावा करनेवाले शख़्स को कभी झूठ बोलते हुए देखा है?"

अबू-सुफ़ियान (रज़ि॰) ने जवाब दिया, "नहीं।"

रसूल (सल्ल॰) का सबसे बड़ा दुश्मन अबू-जह्ल था। वह कहा करता था, "ऐ मुहम्मद! मैं तुमको झूठा नहीं कहता। हाँ, जो चीज़ तुम लेकर आए हो मैं उसको नहीं मानता ।"

रसूल (सल्ल०) वादे के पक्के थे

रसूल (सल्ल०) जब किसी से कोई वादा कर लेते तो उसे ज़रूर पूरा करते। आप (सल्ल०) अपने साथियों को भी ताकीद करते रहते कि अपना वादा हमेशा पूरा किया करो।

● नुबूवत के पहले का वाक़िआ है कि नबी (सल्ल०) ने एक आदमी अब्दुल्लाह से कोई मामला किया। मामला होने के बाद अब्दुल्लाह ने रसूल (सल्ल०) से कहा कि आप यहीं ठहरिए, मैं अभी आकर हिसाब कर दूँगा। आप (सल्ल०) ने वादा कर लिया कि मैं तुम्हारे आने तक यहीं ठहरूँगा। उधर अब्दुल्लाह अपनी बात भूल गए। तीन (3) दिन के बाद याद आया तो दौड़े-दौड़े वहाँ पहुँचे, जहाँ आप (सल्ल०) को छोड़ गए थे। देखा तो आप (सल्ल०) वहीं बैठे थे। अब्दुल्लाह बहुत शर्मिन्दा हुए और माफ़ी माँगने लगे। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मैं तीन दिन से यहाँ तुम्हारा इन्तिज़ार कर रहा हूँ। हालाँकि तुमने मुझे तकलीफ़ दी है लेकिन मैं तुम्हें माफ़ करता हूँ।"

● बद्र की लड़ाई के मौक़े पर मुसलमानों की तादाद बहुत कम थी और रसूल (सल्ल०) को एक-एक आदमी की सख़्त ज़रूरत थी। लड़ाई से पहले दो मुसलमान हज़रत हुसैल (रज़ि०) और उनके बेटे हज़रत हुज़ैफ़ा (रज़ि०) आप (सल्ल०) के पास आए और कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! हम मक्का से आ रहे थे, रास्ते में इस्लाम-दुश्मनों ने हमको पकड़ लिया और फिर इस शर्त पर छोड़ा कि हम लड़ाई में आप (सल्ल०) का साथ नहीं देंगे लेकिन हमने यह वादा मजबूरी में किया था, हम इस्लाम-दुश्मनों से ज़रूर लड़ेंगे।

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "हरगिज़ नहीं, तुम अपना वादा ज़रूर पूरा करो और लड़ाई के मैदान से चले जाओ। हमें सिर्फ़ अल्लाह की मदद चाहिए।"

● हुदैबिया के समझौते की एक शर्त यह थी कि मक्का से जो आदमी मुसलमान होकर नबी (सल्ल०) के पास आएगा उसे मक्का वापस भेज दिया जाएगा। अभी आप (सल्ल०) हुदैबिया में ही थे कि एक मुसलमान अबू-जन्दल

(रज़ि॰) मक्का से भागकर वहाँ पहुँचे। इस्लाम-दुश्मनों ने मक्का में उनको क़ैद कर रखा था और पाँव में बेड़ियाँ डाल रखी थीं। वे किसी तरह क़ैदख़ाने से निकलकर बेड़ियों सहित इस हाल में नबी (सल्ल॰) के पास पहुँचे कि पैरों से ख़ून टपक रहा था। मुसलमान उनको इस हाल में देखकर तड़प उठे और उनको अपनी पनाह में लेने के लिए बेताब हो गए लेकिन आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "ऐ अबू-जन्दल, सब्र करो! मैं मक्का के इस्लाम-दुश्मनों से जो अहद कर चुका हूँ उसको नहीं तोड़ूँगा, जाओ! अल्लाह तुम्हारे लिए कोई और रास्ता निकालेगा।"

● हज़रत अबू-राफ़े (रज़ि॰) मशहूर सहाबी हैं। जिस ज़माने में वे इस्लाम नहीं लाए थे, मक्का से क़ुरैश ने उन्हें कोई सन्देश देकर रसूल (सल्ल॰) के पास भेजा। आप (सल्ल॰) को देखते ही इस्लाम की मुहब्बत उनके दिल में बैठ गई और आप (सल्ल॰) से बोले, "ऐ अल्लाह के रसूल अब मैं इस्लाम-दुश्मनों के पास नहीं जाऊँगा।"

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "मैं न तो वादा तोड़ता हूँ और न एलची (दूत) को अपने पास रोकता हूँ। इस वक़्त तुम वापस जाओ, बाद में चाहो तो आ जाना।"

यह सुनकर हज़रत अबू-राफ़े (रज़ि॰) वापस चले गए और कुछ मुद्दत के बाद नबी (सल्ल॰) के पास वापस आकर इस्लाम क़बूल कर लिया।

● जब नबी (सल्ल॰) ने मक्का पर जीत हासिल की तो बहुत-से लोग, जिन्होंने आप (सल्ल॰) को बहुत सताया था, मक्का से भाग गए। इन भगोड़ों के जो रिश्तेदार मुसलमान हो गए थे उन्होंने आप (सल्ल॰) से दरख़ास्त की कि भाग जानेवालों को माफ़ कर दें। नबी (सल्ल॰) ने माफ़ी देने का वादा कर लिया। जब वे लोग वापस आए तो आप (सल्ल॰) ने वादे के मुताबिक़ उन सबको बिलकुल माफ़ कर दिया।

रसूल (सल्ल॰) बहुत ईमानदार थे

रसूल (सल्ल॰) जैसा ईमानदार कोई और न था। दोस्त-दुश्मन, अपने-पराए, छोटे-बड़े सब आप (सल्ल॰) की ईमानदारी का यक़ीन रखते थे, और आप (सल्ल॰) को अमीन कहते थे। नुबूवत के पहले नबी (सल्ल॰) कारोबार करते थे। लोग आप (सल्ल॰) के पास रुपया और दूसरी चीजें अमानत रखते थे। जब वे माँगते तो नबी (सल्ल॰) वे चीज़ें ज्यों-की-त्यों वापस कर देते। कारोबार में नबी (सल्ल॰) बड़ी ईमानदारी से काम करते। इसलिए आप (सल्ल॰) का कारोबार ख़ूब फलता-फूलता। हिजरत के मौक़े पर हज़रत अली (रज़ि॰) को इसलिए मक्का में छोड़ गए कि वे तमाम लोगों की अमानतें वापस करके मदीना आएँ।

● एक बार रसूल (सल्ल॰) बाज़ार गए। वहाँ अनाज के ढेर में आप (सल्ल॰) ने अपना हाथ डाला तो उँगलियों पर नमी महसूस हुई। नबी (सल्ल॰) ने अनाज के मालिक से पूछा, "यह क्या बात है?" उसने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! ये बारिश में थोड़ा भीग गए थे।"

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया,"इस भीगे हुए अनाज को तूने ऊपर क्यों नहीं रखा कि लोग इसे देख लेते। जो आदमी किसी को धोखा दे वह मेरे तरीक़े पर नहीं है।"

● एक सहाबी तारिक़-बिन-अब्दुल्लाह (रज़ि॰) बयान करते हैं कि एक बार मेरे क़बीले के कुछ लोग मदीना से खजूरें ख़रीदने गए। मैं भी उनके साथ था। हम शहर से बाहर कुछ देर आराम करने के लिए बैठ गए। इतने में शहर से एक आदमी आया जिसने दो पुरानी चादरें पहन रखीं थीं। उसने सलाम के बाद हमसे पूछा कि आप लोग किधर से आए हैं और किधर जाएँगे? हमने जवाब दिया कि हम रबज़ा से मदीना की खजूरें ख़रीदने आए हैं। हमारे पास एक लाल ऊँट था जिसपर नकेल डाली हुई थी। उसने कहा, यह ऊँट बेचते हो? हमने कहा हाँ, हम इतनी खजूरों के बदले इसे दे देंगे। उस आदमी ने ऊँट की नकेल पकड़ी और शहर चला गया। अब हमें यह

ख़याल आया कि हमने अपना ऊँट एक ऐसे आदमी को दे दिया है जिसे हम जानते भी नहीं हैं, अब हम ऊँट की वापसी या उसकी क़ीमत पाने के लिए क्या करें? अभी हम इसी उधेड़-बुन में थे कि शहर से एक आदमी खजूरें ले आया और बोला, मुझे रसूल (सल्ल॰) ने भेजा है, अपने ऊँट के बराबर खजूरें तौलकर या नापकर ले लो। जो बच जाएँ वे तुम्हारी दावत के लिए हैं, उन्हें खाओ-पिओ।

खाने-पीने के बाद हम शहर में गए तो देखा कि वही नेक इनसान मस्जिद के मिम्बर पर खड़े ख़ुत्बा दे रहे थे, और वे रसूल (सल्ल॰) थे।

रसूल (सल्ल॰) लेन-देन में बहुत खरे थे

रसूल (सल्ल॰) लेन-देन के मामले में बहुत खरे थे। आप (सल्ल॰) फ़रमाया करते थे कि सबसे अच्छे लोग वे हैं जो क़र्ज़ को अच्छी तरह से अदा करते हैं। जब किसी आदमी का इन्तिक़ाल हो जाता और आप (सल्ल॰) को मालूम होता कि उसपर क़र्ज़ था तो आप (सल्ल॰) उस वक़्त तक उसकी जनाज़े की नमाज़ न पढ़ते जब तक कि उसका क़र्ज़ अदा न हो जाता।

● एक बार नबी (सल्ल॰) ने किसी से एक प्याला थोड़े दिनों के लिए लिया। इत्तिफ़ाक़ से वह खो गया तो आप (सल्ल॰) ने उसकी क़ीमत अदा कर दी।

● एक बार नबी (सल्ल॰) ने एक देहाती आदमी से क़र्ज़ लिया। वह क़र्ज़ वसूल करने आया तो बड़ी सख़्ती से बातें करने लगा। सहाबियों (रज़ि॰) ने उसे डाँटा कि ढंग से बात करो, तुम्हें मालूम नहीं किससे बात कर रहे हो? उसने कहा, मैं तो अपना हक़ माँगता हूँ।

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "उसे कुछ न कहो, क़र्ज़ देनेवाले को बोलने की इजाज़त है।" फिर आप (सल्ल॰) ने उसका क़र्ज़ अदा कर दिया और उसे अलग से भी बहुत कुछ दिया।

● नुबूवत से पहले नबी (सल्ल॰) कारोबार करते थे और आप (सल्ल॰) का लोगों से लेन-देन रहता था। वे सब लोग कहते थे कि रसूल (सल्ल॰) कारोबार में बहुत खरे थे। आप (सल्ल॰) अपना मामला हमेशा साफ़ रखा करते थे। अरब के एक कारोबारी साइब (रज़ि॰) इस्लाम लाने के बाद आप (सल्ल॰) से मिलने आए। लोगों ने नबी (सल्ल॰) से उनका तआरुफ़ (परिचय) कराते हुए उनकी ईमानदारी और अख़लाक़ की तारीफ़ की। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "मैं इनको तुमसे ज़्यादा जानता हूँ।"

साइब (रज़ि॰) कहने लगे, "ऐ अल्लाह के रसूल, मेरे माँ-बाप आपपर क़ुरबान हों! आप कारोबार में मेरे साझी हुआ करते थे और अपना मामला हमेशा साफ़ रखते थे।"

● एक लड़ाई के मौक़े पर रसूल (सल्ल॰) हज़रत जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह अनसारी (रज़ि॰) के ऊँट पर उनके साथ सवार हो गए। यह ऊँट बहुत सुस्त था, थककर और भी बहुत सुस्त हो गया। नबी (सल्ल॰) ने हज़रत जाबिर (रज़ि॰) से वह ऊँट ख़रीद लिया। फिर यह फ़रमाकर वापस कर दिया कि ऊँट और उसकी क़ीमत दोनों तुम्हारे हैं। (यानी ऊँट को मेरी तरफ़ से तोहफ़ा समझो।)

रसूल (सल्ल०) बहुत रहमदिल थे

अल्लाह ने रसूल (सल्ल०) को सारे जहानों के लिए रहमत बनाकर भेजा था। इसलिए आप (सल्ल०) दुनिया के तमाम लोगों से बढ़कर रहमदिल थे। आप (सल्ल०) दोस्त, दुश्मन, बूढ़े, बच्चे, मर्द, औरत, जानवर, इस्लाम-दुश्मन और मुसलमान हर एक पर रहम करते थे। किसी को मुसीबत में पड़ा देखकर आप (सल्ल०) का दिल भर आता था और आप (सल्ल०) उसका दुख-दर्द दूर करने की पूरी कोशिश करते थे।

एक बार एक शख़्स ने नबी (सल्ल०) से किसी के लिए बद्दुआ करने की दरख़ास्त की। आप (सल्ल०) बहुत नाराज़ हुए और फ़रमाया, "मैं दुनिया में लानत (धिक्कार) के लिए नहीं, बल्कि रहमत बनाकर भेजा गया हूँ।"

नबी (सल्ल०) से पहले अरब और दुनिया की दूसरी कौमें लड़ाई में पकड़े जानेवाले क़ैदियों से बहुत बुरा बरताव करते थे। आप (सल्ल०) ने हुक्म दिया कि क़ैदियों से अच्छा बरताव किया जाए। बद्र की लड़ाई में मुसलमानों ने जिन इस्लाम-दुश्मनों को पकड़ा, उनके बारे में आप (सल्ल०) ने सहाबियों को हुक्म दिया कि इनको खाने-पीने की तकलीफ़ न होने पाए। इस हुक्म के मुताबिक़ सहाबी खुद भूखे रहते या खजूरें खाकर गुज़र-बसर कर लेते थे, लेकिन क़ैदियों को अच्छे-से-अच्छा खाना खिलाते थे। क़ैदियों के हाथ-पैर रस्सियों में बाँध दिए गए थे, वे दर्द से कराहते थे। उधर आप (सल्ल०) उनकी कराहें सुन-सुनकर बार-बार करवटें बदलते थे। लोग समझ गए कि आप (सल्ल०) को क़ैदियों की तकलीफ़ की वजह से नींद नहीं आ रही है। उन्होंने क़ैदियों के बन्धन ढीले कर दिए तो आप (सल्ल०) की बेचैनी दूर हुई।

हुनैन की लड़ाई में मुसलमानों ने छः हज़ार (6,000) लोगों को क़ैद किया। आप (सल्ल०) ने उन सबको न सिर्फ़ आज़ाद कर दिया, बल्कि उनको पहनने के लिए कपड़े भी दिए।

● एक बार एक बद्दू नबी (सल्ल०) की ख़िदमत में आया। आप (सल्ल०) उस वक़्त मस्जिद में बैठे थे। बद्दू को मालूम नहीं था कि मस्जिद

पाक जगह होती है। मस्जिद में ही एक तरफ़ खड़े होकर पेशाब करने लगा। लोग उसको मारने के लिए दौड़े। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "जाने दो, और एक डोल पानी का लाकर बहा दो।"

● एक सफ़र में मशहूर मुनाफ़िक़ अब्दुल्लाह-बिन-उबई ने नबी (सल्ल॰) की शान में बहुत बुरी बातें कहीं। मुसलमानों ने कहा, "इस शख़्स को क़त्ल कर दें।" आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "नहीं, मुझे यह पसन्द नहीं है कि अपने किसी साथी को क़त्ल कराऊँ।" अब्दुल्लाह-बिन-उबई के मुसलमान बेटे ने उसको मदीना में दाख़िल होने से रोकना चाहा तो आप (सल्ल॰) ने उन्हें हुक्म दिया कि अपने बाप का रास्ता न रोको और उसको आने दो।

● एक बार बारिश न होने की वजह से मक्का में भारी अकाल पड़ गया। लोग मुर्दा जानवर तक खाने पर मजबूर हो गए। अबू-सुफ़ियान उस ज़माने में मुसलमानों के कट्टर दुश्मन थे, नबी (सल्ल॰) के पास आए और कहा, "ऐ मुहम्मद, तुम्हारी क़ौम भूखों मर रही है, तुम अपने ख़ुदा से दुआ क्यों नहीं करते?"

हालाँकि मक्का के इस्लाम-दुश्मनों ने नबी (सल्ल॰) को बहुत सताए और बहुत दुख दिए थे लेकिन आप (सल्ल॰) को उनपर तरस आ गया और अल्लाह से बारिश की गिड़गिड़ाकर दुआ की। अल्लाह ने आपकी दुआ क़बूल कर ली और इतना पानी बरसाया कि हर तरफ़ पानी ही पानी हो गया।

● हुदैबिया के मैदान में नबी (सल्ल॰) सहाबियों के साथ फ़ज्र की नमाज़ पढ़ रहे थे कि पास के पहाड़ से अस्सी (80) आदमी मुसलमानों पर हमला करने के इरादे से उतरे। मुसलमानों के पहरेदार होशियार थे, उन्होंने उन सबको क़ैद कर लिया। सहाबियों (रज़ि॰) का ख़याल था कि उन सबको क़त्ल कर दिया जाए लेकिन नबी (सल्ल॰) को उनपर रहम आ गया और आप (सल्ल॰) ने उन सबको आज़ाद कर दिया।

● मक्का में अनाज की पैदावार नहीं होती थी। वहाँ के लोग नज्द से अनाज मँगाया करते थे। नज्द के सरदार सुमामा (रज़ि॰) मुसलमान हुए तो उन्होंने फ़ैसला किया कि रसूल (सल्ल॰) की इजाज़त के बिना एक दाना भी

मक्का नहीं जाएगा। इसका नतीजा यह हुआ कि मक्का के क़ुरैश भूखों मरने लगे। अब उन्होंने नबी (सल्ल॰) को पैग़ाम भेजा कि हम अनाज के एक-एक दाने को तरस रहे हैं, आप सुमामा (रज़ि॰) को अनाज भेजने की इजाज़त दें।

उस वक़्त मक्का के लोग आप (सल्ल॰) के दुश्मन थे लेकिन आपको उनपर रहम आ गया और आप (सल्ल॰) ने सुमामा (रज़ि॰) को पैग़ाम भेजा कि अब इन लोगों पर रहम करो और इनको अनाज भेजा करो।

रसूल (सल्ल॰) फ़रमाया करते थे कि अल्लाह उस आदमी पर रहम नहीं करता जो दूसरों पर रहम नहीं करता।

ग़ुलामों और ख़ादिमों पर रहम

रसूल (सल्ल॰) फ़रमाया करते थे कि तुम्हारे ग़ुलाम और ख़ादिम तुम्हारे भाई हैं। अल्लाह ने उनको तुम्हारे मातहत (अधीन) किया है। हर मुसलमान को चाहिए कि जो खाना ख़ुद खाए वही अपने ग़ुलाम और ख़ादिम को खिलाए और जो कपड़ा ख़ुद पहने उसको भी वही पहनाए। उससे ऐसी मेहनत-मज़दूरी न कराए जो उसकी ताक़त से बढ़कर हो और अगर उसकी ताक़त से बढ़कर काम ले तो उसमें उसकी मदद करे।

● एक बार हज़रत अबू-मसऊद अनसारी (रज़ि॰) अपने ग़ुलाम को किसी ग़लती पर मार रहे थे। अचानक रसूल (सल्ल॰) वहाँ आ गए। आप (सल्ल॰) ने नाराज़ होकर फ़रमाया, "अबू-मसऊद, इस ग़ुलाम पर तुम जितना क़ाबू रखते हो अल्लाह तुमपर उससे ज़्यादा क़ाबू रखता है।"

हज़रत अबू-मसऊद (रज़ि॰) काँप उठे और बोले, "ऐ अल्लाह के रसूल! मैं इस ग़ुलाम को अल्लाह की राह में आज़ाद करता हूँ।" आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "अगर तुम ऐसा न करते तो जहन्नम की आग तुम्हें छू लेती।"

● एक बार रसूल (सल्ल॰) ने देखा कि एक ग़ुलाम आटा पीस रहा है और दर्द से कराह भी रहा है। आप (सल्ल॰) उसके पास गए तो पता चला कि वह बीमार है लेकिन ज़ालिम मालिक उसे छुट्टी नहीं देता। नबी (सल्ल॰) ने उसे आराम से लिटा दिया और सारा आटा ख़ुद पीस दिया। फिर फ़रमाया, "जब तुम्हें आटा पीसना हो तो मुझे बुला लिया करो।"

● मक्का में एक बूढ़े ग़ुलाम को उसके मालिक ने बाग़ में पानी देने का काम सौंप रखा था। ग़ुलाम को बहुत दूर से पानी लाना पड़ता था और वह इस काम में बहुत थक जाता था। नबी (सल्ल॰) ने एक दिन देखा कि वह बड़ी मुश्किल से पानी ला रहा है और उसके पाँव काँप रहे हैं। आप (सल्ल॰) का दिल दर्द से भर आया। आप (सल्ल॰) ने बूढ़े को आराम से बैठाया और उसका सारा काम ख़ुद कर दिया। फिर फ़रमाया, "भाई जब कभी तुम्हें मेरी मदद की ज़रूरत हो, मुझे बुला लिया करो।"

● नबी (सल्ल॰) के सेवक अनस (रज़ि॰) कहते हैं कि मैंने दस साल तक आप (सल्ल॰) की सेवा की। इस मुद्दत में आपने न कभी मुझे झिड़का, न मारा और न यह पूछा कि तुमने यह काम क्यों किया और यह क्यों नहीं किया?

जानवरों पर रहम

रसूल (सल्ल॰) बेसहारा जानवरों पर भी बहुत मेहरबान थे और उनपर किसी तरह का ज़ुल्म या सख़्ती होते नहीं देख सकते थे।

● एक बार एक सहाबी (रज़ि॰) नबी (सल्ल॰) के पास आए। उनके हाथ में चिड़िया के बच्चे थे जो चीं-चीं कर रहे थे।

आप (सल्ल॰) ने पूछा, "ये बच्चे कैसे हैं?"

सहाबी (रज़ि॰) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मैं एक झाड़ी के पास से गुज़रा तो इन बच्चों की आवाज़ सुनी। मैं इनको झाड़ी से निकाल लाया। इनकी माँ ने देखा तो बेचैन होकर मेरे सर पर चक्कर काटने लगी।"

आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "अभी जाओ और इन बच्चों को वहीं रख आओ जहाँ से लाए हो।"

● एक बार नबी (सल्ल॰) सफ़र में थे। रास्ते में एक जगह ठहरे तो एक आदमी ने एक चिड़िया के घोंसले से उसका अण्डा उठा लिया। चिड़िया बेचैन होकर उसके सिर पर मंडराने लगी। आप (सल्ल॰) ने पूछा, "किसने इस चिड़िया का अण्डा उठाकर उसको तकलीफ़ पहुँचाई?"

वे बोले, "ऐ अल्लाह के रसूल! मैंने अण्डा उठाया है।" आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "वह अण्डा वहीं रख दो।"

● एक बार नबी (सल्ल॰) एक अनसारी के बाग़ में गए। वहाँ एक ऊँट भूख से बिलबिला रहा था और उसका पेट पीठ से लगा हुआ था। आप (सल्ल॰) ने बड़ी मुहब्बत से उसकी पीठ पर हाथ फेरा और उसके मालिक को बुलाकर फ़रमाया, "इस जानवर के बारे में तुम ख़ुदा से नहीं डरते!"

● एक बार नबी (सल्ल॰) कहीं जा रहे थे। रास्ते में एक ऊँट को देखा जो भूख की वजह से कमज़ोर हो गया था। आप (सल्ल॰) को बहुत दुख हुआ। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "लोगो, इन बेज़बान जानवरों के मामले में अल्लाह से डरो!"

● एक बार नबी (सल्ल॰) ने एक अरबी को देखा जो ऊँट को तेज़-तेज़ चला रहा था। ऊँट बीमार था और उसपर भारी बोझ लदा हुआ था और उसका मालिक उसे बार-बार चाबुक मार रहा था। आप (सल्ल॰) ने उससे फ़रमाया, "अपने जानवरों पर रहम करो। यह ऊँट बीमार और कमज़ोर है, इसपर ज़ुल्म मत करो।"

औरतों पर रहम और मेहरबानी

रसूल (सल्ल॰) के दुनिया में आने से पहले औरतों को नीच और ज़लील समझा जाता था। आप (सल्ल॰) ने उनपर बड़े एहसान किए, उन्हें उनके हक़ दिए और अपने बर्ताव से यह साबित किया कि औरत नीच और गिरी हुई नहीं, बल्कि इ़ज़्ज़त और हमदर्दी के लायक़ है।

नबी (सल्ल॰) के पास हर वक़्त मर्दों की मजलिस रहती थी, औरतों को आप (सल्ल॰) की प्यारी बातें सुनने का मौक़ा नहीं मिलता था, इसलिए आप (सल्ल॰) ने औरतों के लिए एक दिन ख़ास कर दिया था। वे आप (सल्ल॰) से हर क़िस्म के मसले पूछा करतीं, आप (सल्ल॰) बड़े प्यार से उनके जवाब देते और उनका ख़याल रखते थे।

अरब में कुछ ज़ालिम अपनी बच्चियों को ज़मीन में ज़िन्दा दफ़न कर देते थे। नबी (सल्ल॰) ने बताया कि ऐसा करना बहुत बड़ा गुनाह है और इस

ज़ुल्म को हमेशा के लिए ख़त्म कर दिया। आप (सल्ल॰) ने लोगों को यह भी बताया कि जो आदमी अपनी बेटी या बेटियों से अच्छा बर्ताव करेगा और उनकी अच्छी तरबियत करेगा, अल्लाह उसको जन्नत में दाख़िल करेगा।

नबी (सल्ल॰) ने लोगों को यह भी बताया कि जन्नत माँ के पैरों के नीचे है इसलिए माँ की इज़्ज़त और ख़िदमत करो।

नबी (सल्ल॰) फ़रमाया करते थे कि तुममें सबसे अच्छा वह है जो अपने बीवी-बच्चों के साथ अच्छा बर्ताव करता है।

आप (सल्ल॰) घर में होते या सफ़र में, औरतों के आराम का ख़याल रखते और सहाबियों (रज़ि॰) से फ़रमाते कि औरतों का ख़याल रखो, उनके हुक़ूक़ उन्हें दो और उनके मामले में अल्लाह से डरते रहो।

● एक सफ़र में कुछ औरतें ऊँटों पर सवार थीं। अंजशा नाम के एक हबशी ग़ुलाम उनके सारबान थे। वे कोई गीत गाने लगे जिससे ऊँट तेज चलने लगे।

आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "अंजशा, देखना काँच के शीशों को तोड़ न देना।"

नबी (सल्ल॰) का मतलब था कि कहीं ऊँटों के तेज चलने से औरतों को तकलीफ़ न हो।

● सफ़र में नबी (सल्ल॰) के साथ अगर आप (सल्ल॰) की पाक बीवियाँ होतीं तो आप (सल्ल॰) अपना घुटना आगे बढ़ा देते और वे अपना पाँव उसपर रखकर चढ़तीं।

● एक बार ऊँटनी पर आप (सल्ल॰) के साथ बीबी सफ़ीया (रज़ि॰) भी सवार थीं। ऊँटनी का पाँव फिसल गया। आप (सल्ल॰) और बीबी सफ़ीया (रज़ि॰) दोनों गिर पड़े। एक सहाबी हज़रत अबू-तलहा (रज़ि॰) पास ही थे। वे दौड़ते हुए आए और नबी (सल्ल॰) को उठाने लगे। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "पहले औरत की ख़बर लो।"

● नबी (सल्ल॰) अपने घर में होते तो घर के काम-काज में बीवियों का हाथ बटाते थे। जब अज़ान सुनते तो नमाज़ के लिए तशरीफ़ ले जाते थे।

रसूल (सल्ल॰) यतीमों के सरपरस्त थे

रसूल (सल्ल॰) यतीम बच्चों का बहुत ख़याल रखते थे। आप (सल्ल॰) उनकी मदद और देखभाल करते और दूसरों को भी इसपर उभारते रहते थे।

नबी (सल्ल॰) फ़रमाते थे कि अल्लाह उस घर को बहुत पसन्द फ़रमाता है जिसमें यतीम की इज़्ज़त की जाती है। जो आदमी किसी यतीम को अपने खाने-पीने में शामिल करेगा अल्लाह उसको जन्नत में दाख़िल करेगा।

● हज़रत अबू-हुरैरा (रज़ि॰) कहते हैं कि एक आदमी ने रसूल (सल्ल॰) से कहा कि मेरा दिल बड़ा सख़्त है।

आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "यतीम के सिर पर हाथ फेरा कर और बेसहारा लोगों को खाना खिलाया कर।"

● एक बार एक लड़का फटे-पुराने कपड़े पहने नबी (सल्ल॰) के पास आया और कहने लगा, "ऐ अब्दुल-मुत्तलिब के बेटे, मेरे बाप के मरने के बाद अबू-जह्ल ने उसके सारे माल पर क़ब्ज़ा कर लिया और अब वह उसमें से मुझे कुछ नहीं देता। अब मेरे पास तन ढकने के लिए कपड़े तक नहीं हैं।

नबी (सल्ल॰) यतीम बच्चे का हाल सुनकर उसी वक़्त उठ खड़े हुए और बच्चे का हाथ पकड़कर सीधे अबू-जह्ल के घर गए और उससे फ़रमाया, "इस बच्चे का माल इसे दे दो।"

अबू-जह्ल पर नबी (सल्ल॰) का ऐसा रौब पड़ा कि वह काँप उठा और उसी वक़्त यतीम बच्चे का माल उसे लाकर दे दिया।

● एक बार नबी (सल्ल॰) ईद के दिन कहीं जा रहे थे। रास्ते में एक बच्चे को देखा जो दूसरे बच्चों से अलग उदास बैठा था। आप (सल्ल॰) ने उस बच्चे से पूछा, "बेटे क्या बात है, तुम उदास क्यों बैठे हो, अपने साथियों के साथ खेलते क्यों नहीं?" बच्चे ने जवाब दिया, "मेरे बाप का इन्तिक़ाल हो चुका है और माँ ने दूसरी शादी कर ली है, अब मेरे सिर पर हाथ रखनेवाला कोई नहीं है।"

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, “क्या तुम्हें यह पसन्द नहीं कि मुहम्मद (सल्ल॰) तुम्हारे बाप हों और आइशा (रज़ि॰) तुम्हारी माँ हों?”

बच्चा ख़ुश हो गया और आप (सल्ल॰) ने उस बच्चे की देखभाल की ज़िम्मेदारी ले ली।

● हज़रत असअद-बिन-ज़ुरारा अनसारी (रज़ि॰) ने इन्तिक़ाल से पहले यह वसीयत की थी कि मैं दो छोटी-छोटी बच्चियों को छोड़े जा रहा हूँ, मेरे बाद इनके सरपरस्त रसूल (सल्ल॰) होंगे। नबी (सल्ल॰) ने हमेशा उन यतीम बच्चियों का ख़याल रखा। जब वे बड़ी हुईं तो उनको सोने के ज़ेवर पहनाए और उनकी शादी कर दी।

इसी तरह, नबी (सल्ल॰) ने बहुत-से यतीम लड़कों और लड़कियों की परवरिश और तरबियत की।

रसूल (सल्ल०) ग़रीबों के हमदर्द थे

रसूल (सल्ल०) को ग़रीबों और बेसहारा लोगों से बड़ी मुहब्बत थी। आप (सल्ल०) उनके सच्चे ख़ैरख़ाह और हमदर्द थे। उनसे ऐसा बर्ताव करते कि उन्हें अपनी ग़रीबी महसूस न होती थी। नबी (सल्ल०) उनकी मदद करते, हर वक़्त उनका ख़याल रखते। आप (सल्ल०) दुआ माँगा करते थे कि–

"ऐ अल्लाह, मुझे ग़रीबों में ज़िन्दा रख, ग़रीबों में उठा और ग़रीबों के साथ मेरा मामला कर।"

अगर कोई ग़रीब क़र्ज़ न चुका पाता तो आप (सल्ल०) उसका क़र्ज़ चुका देते थे। कोई भूखा होता तो उसे खाना खिलाते थे। किसी को रुपये, पैसे या अनाज की ज़रूरत होती तो उसकी ज़रूरत पूरी कर देते थे। किसी के पास पहनने के लिए कपड़े न होते तो उसको कपड़े पहनाते थे। नबी (सल्ल०) फ़रमाते थे कि कोई मुसलमान क़र्ज़ छोड़कर मर जाए तो मुझे ख़बर करो, मैं उसका क़र्ज़ अदा करूँगा और जो सामान या जायदाद वह छोड़ जाए वह उसके वारिसों (उत्तराधिकारियों) का है, मुझे उससे कोई मतलब नहीं है।

नबी (सल्ल०) की प्यारी बेटी हज़रत फ़ातिमा (रज़ि०) की यह हालत थी कि घर के काम-काज करते-करते और चक्की पीसते-पीसते उनकी हथेलियाँ घिस गई थीं और मश्क में पानी भर-भरकर लाने से सीने पर नीले दाग़ पड़ गए थे। एक बार उन्होंने नबी (सल्ल०) से दरख़ास्त की कि मुझे कोई नौकरानी दी जाए। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया–

"बेटी, सुफ़्फ़ा के ग़रीबों का अभी तक कोई इन्तिज़ाम नहीं हो सका है, फिर मैं तुम्हारी दरख़ास्त कैसे क़बूल करूँ?"

एक बार एक पूरा क़बीला नबी (सल्ल०) के पास आया। वे लोग इतने ग़रीब थे कि किसी के तन पर पूरा कपड़ा भी न था। सारे नंगे तन, नंगे पैर थे। उन्हें देखकर आप (सल्ल०) बेचैन हो गए। परेशानी में घर गए फिर बाहर आए, फिर मुसलमानों को जमा करके उन लोगों की मदद के लिए कहा। हर मुसलमान ने अपनी हैसियत के मुताबिक़ मदद की तो नबी (सल्ल०) बहुत खुश हुए।

रसूल (सल्ल॰) बेसहारों का सहारा थे

जिन बेसहारा लोगों का कोई नहीं होता था, रसूल (सल्ल॰) उनका सहारा थे, आप (सल्ल॰) हर तरीक़े से उनकी मदद करते थे।

एक दिन नबी (सल्ल॰) काबा में बैठे थे कि एक अनजान आदमी ने फ़रियाद की—

"ऐ क़ुरैश के लोगो, तुम बाहर से आनेवाले मुसाफ़िरों को लूट लेते हो?"

नबी (सल्ल॰) ने उससे पूछा, "तुमपर किसने ज़ुल्म किया है?" उसने कहा, "मैं बहुत अच्छी क़िस्म के तीन ऊँट बेचने के लिए लाया था। अबू-जह्ल उनको बहुत कम क़ीमत पर ख़रीदना चाहता है और किसी दूसरे को भी उससे ज़्यादा क़ीमत नहीं लगाने देता।" नबी (सल्ल॰) ने पूछा, "तुम इन ऊँटों की क्या क़ीमत लेना चाहते हो?"

उसने क़ीमत बताई तो नबी (सल्ल॰) ने उतने रुपये देकर ख़ुद वे ऊँट ख़रीद लिए। अबू-जह्ल भी वहाँ मौजूद था। आप (सल्ल॰) ने उससे फ़रमाया, "तुमने इस ग़रीब देहाती के साथ जो कुछ किया है फिर कभी किसी के साथ ऐसा किया तो तुम्हारे लिए अच्छा न होगा।"

अबू-जह्ल पर नबी (सल्ल॰) का ऐसा रौब पड़ा कि उसके मुँह से बस यही निकला, "नहीं, फिर कभी ऐसा नहीं होगा।"

● एक बार एक औरत मक्का की गली से गुज़र रही थी। उसके सिर पर इतना भारी बोझ था कि उसके पाँव बड़ी मुश्किल से उठ रहे थे। लोग उसपर हँस रहे थे। रसूल (सल्ल॰) ने उसकी परेशानी देखी तो तुरन्त आगे बढ़े और उसका बोझ उठाकर उसकी मंज़िल पर पहुँचा दिया।

● एक दिन रसूल (सल्ल॰) एक गली से गुज़र रहे थे कि एक अन्धी औरत ठोकर खाकर गिर पड़ी। लोग उसे गिरते देखकर हँसने लगे लेकिन आप (सल्ल॰) की आँखों में आँसू आ गए। आप (सल्ल॰) ने उस औरत को

उठाया और उसके घर तक पहुँचा दिया। उसके बाद आप (सल्ल॰) हर दिन उस औरत के घर खाना दे जाते थे।

● मदीना में एक पागल औरत थी। एक दिन नबी (सल्ल॰) के पास आई और बोली, "मुहम्मद, मेरे साथ चलो और मेरा फ़ुलाँ काम कर दो!"

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "जहाँ कहो चलूँगा।" फिर आप (सल्ल॰) उसके साथ गए और उसका काम करके वापस आए।

रसूल (सल्ल॰) बीमारों का ख़याल रखते थे

रसूल (सल्ल॰) बीमारों का बहुत ख़याल रखते, उनका हाल पूछते और उन्हें तसल्ली देते थे। बीमार चाहे मुसलमान हो या ग़ैर-मुस्लिम, आप (सल्ल॰) हाल-चाल पूछने के लिए उसके पास तशरीफ़ ले जाते।

एक बार नबी (सल्ल॰) का एक यहूदी सेवक बीमार हो गया। आप (सल्ल॰) को पता चला तो आप (सल्ल॰) उसका हाल पूछने तशरीफ़ ले गए और देर तक उसके सिरहाने बैठे तसल्ली देते रहे। आप (सल्ल॰) के अख़लाक़ का उसपर ऐसा असर हुआ कि वह मुसलमान हो गया।

● एक बार मशहूर सहाबी साद-बिन-अबी-वक़्क़ास (रज़ि॰) बहुत बीमार हो गए। नबी (सल्ल॰) उनका हाल पूछने के लिए तशरीफ़ ले गए। हज़रत साद (रज़ि॰) कहते हैं कि रसूल (सल्ल॰) ने अपना हाथ मेरे सीने पर रखा जिसकी ठण्डक मैंने अपने दिल में महसूस की। फिर आप (सल्ल॰) ने मेरी सेहत के लिए तीन बार दुआ की और मैं अच्छा हो गया।

● एक बार ख़ज़रज क़बीले के सरदार साद-बिन-उबादा (रज़ि॰) बीमार हो गए। नबी (सल्ल॰) उनका हाल मालूम करने के लिए गए। उनकी हालत देखकर आप (सल्ल॰) का दिल भर आया और आँखों से आँसू बहने लगे। आप (सल्ल॰) ने उनकी सेहत के लिए दुआ माँगी। अल्लाह ने उनकी बीमारी दूर कर दी।

● एक बार हज़रत जाबिर-बिन-अब्दुल्लाह अनसारी (रज़ि॰) बीमार हो गए। उनका घर बहुत दूर था लेकिन आप (सल्ल॰) उनका हाल पूछने कई बार पैदल तशरीफ़ ले गए।

एक दिन नबी (सल्ल॰) हज़रत जाबिर (रज़ि॰) के घर पहुँचे तो वे बेहोश थे। आप (सल्ल॰) ने उनके मुँह पर पानी की छींटे मारीं तो उन्हें होश आ गया।

रसूल (सल्ल॰) लोगों के दुख के साथी थे

कोई आदमी मर जाए तो उसके रिश्तेदारों के साथ हमदर्दी करने और उसके दुख में साथ देने को ताज़ियत कहते हैं। रसूल (सल्ल॰) किसी के मरने की ख़बर सुनते तो ताज़ियत के लिए उसके घर जाते। मरनेवाले के घरवालों को तसल्ली देते और सब्र की नसीहत करते। मरनेवाला मुसलमान होता तो आप (सल्ल॰) उसके जनाज़े में शरीक होते।

● नबी (सल्ल॰) के चचेरे भाई जाफ़र-बिन-अबू-तालिब मुअ्ता की लड़ाई में शहीद हो गए तो आप (सल्ल॰) को बहुत दुख हुआ। आप (सल्ल॰) उनके घर तशरीफ़ ले गए। उनकी बीवी हज़रत असमा-बिन्ते-उमैस (रज़ि॰) को तसल्ली दी और उनके बच्चों को गले लगाकर प्यार किया फिर अपने घरवालों से फ़रमाया कि जाफ़र के घरवालों के लिए खाना पकाओ क्योंकि वे आज बहुत दुखी हैं।

● एक सहाबी बीमार थे। नबी (सल्ल॰) उनका हाल पूछने कई बार तशरीफ़ ले गए। एक रात वे चल बसे। लोगों ने उन्हें रात ही में दफ़न कर दिया और आप (सल्ल॰) को इस ख़याल से ख़बर न दी कि आप (सल्ल॰) को तकलीफ़ होगी। सुबह में जब नबी (सल्ल॰) को ख़बर हुई तो आप (सल्ल॰) ने शिकायत की कि तुमने मुझे क्यों ख़बर नहीं की? फिर नबी (सल्ल॰) उसकी क़ब्र पर गए और जनाज़े की नमाज़ पढ़ी।

● हज़रत अबू-सलमा-बिन-अब्दुल-असद (रज़ि॰) का इन्तिक़ाल हुआ तो नबी (सल्ल॰) उनके घर गए और बड़ी देर तक उनके बीवी-बच्चों को तसल्ली देते रहे।

● बद्र की लड़ाई से पहले हज़रत असअद-बिन-ज़ुरारा अनसारी (रज़ि॰) का इन्तिक़ाल हो गया। नबी (सल्ल॰) को ख़बर हुई तो आप (सल्ल॰) बहुत दुखी हुए । उनके घर गए, रिश्तेदारों को तसल्ली दी और फ़रमाया कि मौत का कोई इलाज नहीं । हज़रत असअद (रज़ि॰) ने दो छोटी बच्चियाँ छोड़ी थीं। आप (सल्ल॰) ने हमेशा उनका ख़याल रखा और दोनों को सोने की बालियाँ जिनमें मोती पड़े हुए थे, पहनाईं।

रसूल (सल्ल॰) मेहमानों की बहुत इज़्ज़त करते थे

रसूल (सल्ल॰) मेहमानों की बहुत इज़्ज़त करते थे । खुद भूखे रहकर भी मेहमानों को खाना खिलाते और उनकी हर तरह ख़िदमत करते थे । आप (सल्ल॰) मेहमानों में कोई भेदभाव न करते, कोई भी मेहमान आता आप (सल्ल॰) बिना कुछ खिलाए-पिलाए न जाने देते।

● एक बार एक ग़ैर-मुस्लिम नबी (सल्ल॰) के पास मेहमान ठहरा। आप (सल्ल॰) ने उसे एक बकरी का दूध पिलाया। उससे उसका पेट न भरा, फिर आप (सल्ल॰) ने उसे दूसरी बकरी का दूध पिलाया, उससे भी पेट न भरा। फिर आप (सल्ल॰) ने उसे तीसरी, चौथी यहाँ तक कि सात बक़रियों का दूध पिलाया तब कहीं जाकर उसका पेट भरा। नबी (सल्ल॰) ने खुशी-खुशी पूरी मेहमानदारी की, न आप (सल्ल॰) के माथे पर कोई बल पड़ा, न मुँह से कोई नाराज़गी की बात निकली ।

● एक बार ग़िफ़ार क़बीले का एक आदमी नबी (सल्ल॰) का मेहमान हुआ। आप (सल्ल॰) के पास रात में पीने के लिए बकरी का थोड़ा-सा दूध था। आप (सल्ल॰) ने सारा दूध मेहमान को पिला दिया और खुद सारी रात भूखे रहे ।

● जो लोग नबी (सल्ल॰) से मुलाक़ात करने या इस्लाम क़बूल करने के लिए मदीना आते, आप (सल्ल॰) उनकी बहुत इज़्ज़त और ख़ातिरदारी करते। हिजरत के नवें साल नजरान से साठ (60) ईसाई आप (सल्ल॰) से मिलने आए। आप (सल्ल॰) ने उनको मस्जिदे-नबवी में ठहराया और उन्हें अपने तरीक़े पर नमाज़ पढ़ने की इजाज़त भी दे दी। आप (सल्ल॰) ने उन लोगों की खुद मेहमानदारी की ।

● एक बार एक ग़ैर-मुस्लिम नबी (सल्ल॰) का मेहमान बना। रात को उसने इतना खाना खा लिया कि उसके पेट में गड़बड़ हो गई और नींद की

हालत में उसने बिछौना गन्दा कर दिया। सुबह को शर्म के मारे आप (सल्ल॰) के आने से पहले ही उठकर चला गया। रास्ते में उसे याद आया कि जल्दी में तलवार तो वहीं छोड़ आया हूँ। तलवार लेने के लिए वापस आया तो देखता है कि रसूल (सल्ल॰) बिछौना धो रहे हैं। आप (सल्ल॰) के साथी कहते हैं कि ऐ अल्लाह के रसूल! हम यह काम कर लेंगे, लेकिन नबी (सल्ल॰) फ़रमाते हैं, "नहीं! नहीं! वह आदमी मेरा मेहमान था इसलिए यह काम मैं ख़ुद ही करूँगा।"

जब नबी (सल्ल॰) ने उस आदमी को देखा तो बड़ी मुहब्बत से फ़रमाया, "भाई तुम अपनी तलवार यहीं भूल गए थे, इसे ले जाओ।" उस आदमी के दिल पर आप (सल्ल॰) के अख़लाक़ का ऐसा असर पड़ा कि वह उसी वक़्त मुसलमान हो गया।

रसूल (सल्ल॰) फ़रमाया करते थे कि जो आदमी अल्लाह और क़ियामत के दिन को मानता है उसे चाहिए कि मेहमान की इज़्ज़त करे, अपने मकान में ठहराए, अच्छा खाना खिलाए और उसका ख़याल रखे। मेहमानदारी का हक़ तीन (3) दिन तक है। उससे ज़्यादा करे तो सवाब होगा।

रसूल (सल्ल॰) लोगों की ख़िदमत करके ख़ुश होते थे

रसूल (सल्ल॰) अल्लाह के बन्दों की ख़िदमत करने के लिए हर वक़्त तैयार रहते थे। अपना हो या पराया, मुसलमान हो या ग़ैर-मुस्लिम, मालिक हो या नौकर, नबी (सल्ल॰) हर एक के काम आते थे और उनका छोटे-से-छोटा काम भी कर देते थे।

मक्का में नबी (सल्ल॰) हर दिन ग़रीब और बेसहारा बेवा (विधवा) औरतों का सौदा-सामान ख़ुद ख़रीदकर और अपने कन्धों पर उठाकर उनके घरों पर पहुँचा देते थे। एक दिन अबू-सुफ़ियान ने नफ़रत भरे अन्दाज़ में कहा, "तुमने ग़रीब और नीच लोगों का सामान उठा-उठाकर अपने ख़ानदान का नाम बदनाम कर दिया है।"

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "मैं हाशिम का पोता हूँ, जो गरीबों और अमीरों सबकी मदद करता था और अपने से कम दर्जे के लोगों को नीच नहीं समझता था।"

● एक बार नबी (सल्ल॰) के एक सहाबी ख़ब्बाब-बिन-अरत (रज़ि॰) मदीना से दूर एक लड़ाई पर गए। उनके घर में कोई मर्द नहीं था और औरतें जानवर का दूध दूहना नहीं जानती थीं। नबी (सल्ल॰) को ख़बर हुई तो आप (सल्ल॰) हर दिन ख़ब्बाब (रज़ि॰) के घर जाते और उनके जानवरों का दूध दूह दिया करते ।

● एक बार नबी (सल्ल॰) नमाज़ के लिए खड़े हो चुके थे कि एक बद्दू आया और आप (सल्ल॰) का दामन पकड़कर बोला, "मेरा एक छोटा-सा काम रह गया है, कहीं ऐसा न हो कि मैं भूल जाऊँ, पहले उसे कर दो।"

नबी (सल्ल॰) उसके साथ तुरन्त मस्जिद से बाहर निकल आए और उसका काम पूरा करके नमाज़ अदा की।

● मदीना की कनीज़ें नबी (सल्ल॰) के पास आतीं और दरख़ास्त करतीं, "ऐ अल्लाह के रसूल! मेरा फ़ुलाँ काम है।" आप (सल्ल॰) अपना काम-काज छोड़कर उठ खड़े होते और उनके साथ जाकर उनका काम कर देते ।

यानी नबी (सल्ल॰) हर एक की ख़िदमत करके ख़ुश होते थे।

रसूल (सल्ल॰) बड़े सख़ी (दानशील) थे

अपना धन दूसरों की भलाई के लिए दिल खोलकर ख़र्च करना सख़ावत (दानशीलता) है। हज़रत अली (रज़ि॰) कहते हैं कि नबी (सल्ल॰) जैसा दानी कोई और न था।

नबी (सल्ल॰) ने कभी किसी माँगनेवाले को नहीं झिड़का, कुछ-न-कुछ देकर विदा किया। अगर आप (सल्ल॰) के पास कुछ न होता तो क़र्ज़ लेकर भी माँगनेवाले को देते या उससे कहते कि तुम मेरा नाम लेकर फ़ुलाँ आदमी से क़र्ज़ ले लो, मैं क़र्ज़ चुका दूँगा।

हज़रत जाबिर (रज़ि॰) कहते हैं कि ऐसा कभी नहीं हुआ कि रसूल (सल्ल॰) से कुछ माँगा गया हो और आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया हो कि मैं नहीं देता।

एक बार एक आदमी ने नबी (सल्ल॰) को बकरियों का एक बड़ा रेवड़ (झुण्ड) दो पहाड़ों के बीच चराते देखा। उसने दरख़ास्त की कि ऐ मुहम्मद! ये सारी बकरियाँ मुझे दे दे। नबी (सल्ल॰) ने उसी वक़्त सारी बकरियाँ उसे दे दीं। आप (सल्ल॰) का यह बर्ताव देखकर वह आदमी अपने क़बीले सहित मुसलमान हो गया ।

एक दिन नबी (सल्ल॰) के पास सोने के छः (6) सिक्के थे। चार (4) आप (सल्ल॰) ने ख़र्च कर दिए, दो (2) बच गए। उनकी वजह से आप (सल्ल॰) सारी रात न सो सके। हज़रत आइशा (रज़ि॰) ने कहा कि छोटी-सी बात है, आप सुबह को इन्हें भी दान कर दीजिएगा। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "क्या ख़बर मैं सुबह तक ज़िन्दा रहूँ या न रहूँ!"

एक बार रसूल (सल्ल॰) अस्र की नमाज़ पढ़ने के बाद घर तशरीफ़ ले गए। अस्र के बाद घर जाना आप (सल्ल॰) की आदत के ख़िलाफ़ था, इसलिए लोगों को ताज्जुब हुआ। आप वापस आए तो फ़रमाया, "घर में कुछ सोना रखा था, मुझे ख़याल आया कि ऐसा न हो कि वह रात में भी घर में ही रह जाए। मैं घरवालों से यह कहने गया था कि उसे रात होने से

पहले अल्लाह की राह में दे दें।

एक बार नब्बे हज़ार (90,000) दिरहम आए। नबी (सल्ल॰) उनको ग़रीबों और बेसहारा लोगों में बाँटने लगे यहाँ तक कि सब ख़त्म हो गए। फिर एक माँगनेवाला आ गया। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया कि अब मेरे पास कुछ नहीं रहा लेकिन तुम मेरे नाम पर क़र्ज़ ले लो, उसे मैं चुका दूँगा। हज़रत उमर (रज़ि॰) भी वहीं मौजूद थे, उन्होंने कहा, ऐ अल्लाह के रसूल! ख़ुदा किसी को उसकी ताक़त से ज़्यादा तकलीफ़ नहीं देता। आप (सल्ल॰) चुप हो गए। इसपर एक अनसारी ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! आप बेझिझक ख़र्च करें, अल्लाह मालिक है वह कभी आप (सल्ल॰) को बेसहारा न करेगा।" नबी (सल्ल॰) यह सुनकर ख़ुश हो गए और फ़रमाया कि हाँ, मुझे ऐसा ही हुक्म दिया गया है।

● एक बार बहरैन से ढेर सारी दौलत आई। नबी (सल्ल॰) ने उसे मस्जिद के आँगन में रखवा दिया और नमाज़ पढ़ने के बाद उसे बाँटना शुरू किया। हर आनेवाले को आप (सल्ल॰) कुछ ज़रूर देते यहाँ तक कि सब कुछ बँट गया और आप (सल्ल॰) कपड़े झाड़कर उठ खड़े हुए।

ईसार (त्याग)

ईसार (त्याग) सख़ावत (दानशीलता) से बढ़कर है। सख़ावत यह है कि अपनी ज़रूरत पूरी करके बचा हुआ माल अल्लाह की राह में ख़र्च किया जाए और ईसार यह है कि दूसरों की ज़रूरत को अपनी ज़रूरत से बढ़कर समझा जाए, चाहे उसमें अपना नुक़सान ही क्यों न हो, अल्लाह को ख़ुश करने के लिए उसकी फ़िक्र न की जाए।

रसूल (सल्ल॰) सबसे बढ़कर ईसार करनेवाले थे। एक दिन बनू-ग़िफ़ार क़बीले का एक आदमी आप (सल्ल॰) के घर मेहमान रहा। उस रात आप (सल्ल॰) के घर में सिर्फ़ बकरी का दूध ही था। नबी (सल्ल॰) ने सारा दूध मेहमान को पिला दिया और ख़ुद भूखे रहे जबकि इससे पिछली रात भी आप (सल्ल॰) ने कुछ नहीं खाया था।

● एक बार एक औरत ने नबी (सल्ल॰) को एक चादर नज़्र की। आप

(सल्ल०) को चादर की ज़रूरत थी। आप (सल्ल०) ने वह चादर ले ली। उसी वक़्त एक सहाबी अपने लिए चादर माँगने आए। आप (सल्ल०) ने तुरन्त वह चादर उनको दे दी।

● एक बार एक ग़रीब सहाबी ने शादी की। वलीमे की दावत के लिए उनके पास कुछ नहीं था। नबी (सल्ल०) को मालूम हुआ तो अपने घर से आटे की बोरी मँगाकर उनको वलीमे के लिए दे दी, जबकि उस दिन आटे के सिवा आप (सल्ल०) के घर में खाने को कुछ न था।

● एक सहाबी ने मरने से पहले वसीयत की कि मेरे सात बाग़ रसूल (सल्ल०) को दे दिए जाएँ। यह वाक़िआ तीन हिजरी का है। उस ज़माने में आप (सल्ल०) को माल की सख़्त ज़रूरत थी लेकिन नबी (सल्ल०) ने उन सात बाग़ों की आमदनी अल्लाह की राह में वक़्फ़ कर दी। जो कुछ भी आमदनी होती आप (सल्ल०) उसका एक पैसा भी अपने पास न रखते। सब ग़रीबों और बेसहारा लोगों में बाँट देते थे।

रसूल (सल्ल॰) बहुत शर्मीले थे

रसूल (सल्ल॰) बहुत ही शर्मीले थे। आप (सल्ल॰) बाज़ार से नज़रें नीची करके ख़ामोशी से गुज़रते थे। ठहाका मारकर कभी न हँसते। हँसने के मौक़े पर भी अक्सर मुस्करा देते। जिस्म के छिपानेवाले हिस्सों का ध्यान रखते। अगर कोई ग़लती करनेवाला या ज़ुल्म करनेवाला नबी (सल्ल॰) के पास आकर माफ़ी माँगता तो आप (सल्ल॰) शर्म से गरदन झुका लेते। अगर कभी कोई आदमी आप (सल्ल॰) के पास ऐसे काम करता जो आप (सल्ल॰) को पसन्द न होते तो आप (सल्ल॰) उसका नाम लेकर मना नहीं करते, बल्कि ऐसे शब्दों में ऐसे तरीक़े से उस ग़लत काम से रोकते कि सबको उस काम के बुरे होने का पता चल जाता। नबी (सल्ल॰) न कभी किसी का मज़ाक़ उड़ाते थे और न कभी किसी को बुरे नाम से पुकारते थे।

आप हाजत (शौच) से निपटने के लिए आबादी से इतनी दूर चले जाते कि कोई नहीं देख सकता था। कभी-कभी तीन-तीन मील दूर चले जाते थे। उस वक़्त अरब में घरों के अन्दर शौचालय बनाने का रिवाज नहीं था। लोग रफ़ूए-हाजत (शौच-क्रिया) के लिए मैदानों में एक-दूसरे के सामने बैठ जाते थे और एक-दूसरे से बातें किया करते थे। नबी (सल्ल॰) ने लोगों को ऐसा करने से मना किया और कहा कि ऐसा करने से अल्लाह नाराज़ होता है।

नबी (सल्ल॰) फ़रमाया करते थे कि हर दीन (धर्म) की एक ख़ूबी होती है, और इस्लाम की ख़ूबी शर्म है, और शर्म से सिर्फ़ भलाई ही मिलती है।

● रसूल (सल्ल॰) खुद तकलीफ़ सह लेते थे लेकिन शर्म की वजह से किसी दूसरे से काम नहीं लेते थे।

● एक बार नबी (सल्ल॰) ने एक आदमी को मैदान में नंगा नहाते देखा। आप (सल्ल॰) मिम्बर पर चढ़ गए और अल्लाह की पाकी और बड़ाई बयान करने के बाद फ़रमाया, "बेशक अल्लाह शर्मवाला है, वह शर्म और परदापोशी को पसन्द करता है, इसलिए जब तुममें से कोई (मैदान में) नहाए तो उसे चाहिए कि परदा कर ले।"

रसूल (सल्ल०) हँसमुख थे

हमारे रसूल (सल्ल०) बड़े हँसमुख और ख़ुशमिज़ाज थे। आप (सल्ल०) को मिज़ाज का रुखापन पसन्द नहीं था। आप (सल्ल०) कभी-कभी लोगों से हँसी-मज़ाक़ भी कर लेते थे, लेकिन यह हँसी-मज़ाक़ भी बहुत पाकीज़ा और प्यारा होता था।

● एक बार एक अन्धा नबी (सल्ल०) के पास आया और कहने लगा, "ऐ अल्लाह के रसूल! क्या मैं जन्नत में जा सकूँगा?" आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "नहीं भाई, कोई अन्धा जन्नत में नहीं जाएगा।"

यह सुनकर अन्धा रोने लगा।

नबी (सल्ल०) हँस पड़े और फ़रमाया, "भाई, कोई अन्धा अन्धेपन की हालत में जन्नत में नहीं जाएगा, बल्कि सबकी आँख में रौशनी होगी।" यह सुनकर वह अन्धा आदमी हँसने लगा।

● एक बार एक बूढ़ी औरत नबी (सल्ल०) के पास आई और आप (सल्ल०) से दरख़ास्त की कि मेरे लिए जन्नत की दुआ करें।

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "कोई बुढ़िया जन्नत में नहीं जाएगी।" यह सुनकर बूढ़ी औरत रोने लगी।

आप (सल्ल०) ने मुस्कराकर फ़रमाया, "बूढ़ी औरतें जन्नत में जवान होकर जाएँगी।"

अब वह बूढ़ी औरत बहुत ख़ुश हो गई।

● एक बार हज़रत उम्मे ऐमन (रज़ि०) (जो नबी सल्ल० की माँ के इन्तिक़ाल के बाद नबी (सल्ल०) की देखभाल करती थीं) ने आप (सल्ल०) से एक ऊँट माँगा। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मैं आपको ऊँट का बच्चा दूँगा।"

उन्होंने कहा, "मैं ऊँट का बच्चा लेकर क्या करूँगी?"

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "मैं तो आपको ऊँट का बच्चा ही दूँगा।" यह

सुनकर वे मायूस हो गईं।

नबी (सल्ल॰) ने एक ख़ादिम को इशारा किया। उन्होंने एक जवान ऊँट लाकर हज़रत उम्मे-ऐमन (रज़ि॰) को दे दिया। अब नबी (सल्ल॰) ने मुस्कराकर फ़रमाया, "क्या यह ऊँट का बच्चा नहीं? हर ऊँट ऊँट का ही बच्चा होता है।" हज़रत उम्मे-ऐमन मुस्करा उठीं।

● एक बार एक ख़ातून ने रसूल (सल्ल॰) से दरख़ास्त की, "ऐ अल्लाह के रसूल! मेरे शौहर बीमार हैं, उनकी सेहत के लिए दुआ करें।" आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "तुम्हारा शौहर वही है जिसकी आँखों में सफ़ेदी है।" वे हैरान रह गईं और घर जाकर अपने शौहर की आँख खोलकर देखने लगीं।

उन्होंने कहा, "क्या बात है?"

वे कहने लगीं, "अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने फ़रमाया है कि तुम्हारे शौहर की आँख में सफ़ेदी है।"

वे हँस पड़े और कहने लगे, "क्या कोई ऐसा आदमी भी है जिसकी आँख में सफ़ेदी न हो?"

अब वे रसूल (सल्ल॰) के पाकीज़ा मज़ाक़ को समझीं जिसका मक़सद उनके शौहर को ख़ुश करना था।

रसूल (सल्ल०) बड़े मीठे बोल बोलते थे

रसूल (सल्ल०) हँसमुख और नर्म-मिज़ाज थे। कभी किसी का दिल नहीं दुखाते थे। हर एक से बड़ी मुहब्बत और नर्मी से बातचीत करते थे। आप (सल्ल०) का मुबारक चेहरा हमेशा खिला रहता था। बोली इतनी मीठी थी कि हर एक का दिल मोह लेती।

● एक बार एक आदमी नबी (सल्ल०) के घर आया और अन्दर आने की इजाज़त माँगी। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "उसे अन्दर आने दो लेकिन वह अपने क़बीले का अच्छा आदमी नहीं है।"

जब वह अन्दर आया तो नबी (सल्ल०) उससे बहुत अच्छी तरह मिले और बड़ी मुहब्बत और नर्मी से बातचीत की। जब वह चला गया तो हज़रत आइशा (रज़ि०) ने हैरान होकर पूछा, "ऐ अल्लाह के रसूल! आपने कहा था कि वह अच्छा आदमी नहीं है लेकिन आपने उससे बहुत मुहब्बत और नर्मी से बातचीत फ़रमाई।"

आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अल्लाह के नज़दीक सबसे बुरा आदमी वह है जिसकी बदज़बानी की वजह से लोग उससे मिलना-जुलना छोड़ दें।"

● मदीना में एक बार सूखा पड़ा। अब्बाद-बिन-शुरहबील नाम के एक आदमी भूख से लाचार होकर एक बाग़ में घुस गए और कुछ फल तोड़कर खा लिए और कुछ फल अपने पास रख भी लिए। बाग़ के मालिक ने उन्हें पकड़ लिया और उनके कपड़े उतरवा लिए।

अब्बाद नबी (सल्ल०) के पास शिकायत लेकर आए। बाग़ का मालिक भी साथ था। उसने अब्बाद की चोरी का हाल बयान किया। आप (सल्ल०) ने फ़रमाया, "यह जाहिल था तो तुम नर्मी और मुहब्बत से इसे समझाते, भूखा था तो इसे खाना खिलाते।"

फिर नबी (सल्ल०) ने अब्बाद को कपड़े वापस दिलाए और ढेर सारा अनाज अपने पास से दिया।

● एक बार एक बद्दू आया। उसने नबी (सल्ल०) से कुछ माँगा। आप (सल्ल०) ने उसे दिया और पूछा, "खुश हो?"

उसने कहा, "नहीं, तुमने मेरे साथ कुछ अच्छा बर्ताव नहीं किया।"

इस बदतमीज़ी पर सहाबियों (रज़ि०) को गुस्सा आ गया और उन्होंने उसे क़त्ल करने का इरादा किया। नबी (सल्ल०) ने इशारे से उन्हें रोका और फिर घर से लाकर उसे और दिया। अब वह खुश हो गया और दुआएँ देने लगा।

नबी (सल्ल०) ने बड़ी मुहब्बत से फ़रमाया, "तुम्हारी पहली बात मेरे साथियों को बुरी लगी थी, क्या यह बात जो तुम अब कह रहे हो उनके सामने भी कह दोगे ताकि उनके दिल तुम्हारी तरफ़ से साफ़ हो जाएँ?"

उसने कहा, "मैं कह दूँगा।"

दूसरे दिन नबी (सल्ल०) ने सहाबियों के सामने उससे पूछा, "अब तू मुझसे खुश है ना?"

उसने कहा, "बेशक" और फिर दुआएँ देने लगा।

नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "एक आदमी की ऊँटनी भाग गई। लोग उसके पीछे दौड़ते थे और वह आगे भागती थी। मालिक ने दूसरे लोगों से कहा, 'तुम सब रुक जाओ, यह मेरी ऊँटनी है और मैं ही इसे समझता हूँ।' लोग रुक गए। ऊँटनी एक जगह जाकर घास चरने लगी। मालिक ने उसे पकड़ लिया। मेरी और इस बद्दू की मिसाल ऐसी ही थी, तुम इसे मार डालते तो यह बेचारा जहन्नम में जाता।"

रसूल (सल्ल॰) दूसरों पर अपनी बड़ाई नहीं जताते थे

अल्लाह के बाद रसूल (सल्ल॰) सारे जहानों की सबसे बड़ी हस्ती हैं। अल्लाह ने नबी (सल्ल॰) को अरब की हुकूमत भी दी थी। इसलिए आप (सल्ल॰) को हर तरह से बड़ा रुत्बा हासिल था लेकिन आप (सल्ल॰) कभी दूसरों पर अपनी बड़ाई नहीं जताते थे, बल्कि सबसे बराबरी का बर्ताव करते थे। इसी को सही मानी में बराबरी कहते हैं। आप (सल्ल॰) ने बराबरी और भाईचारे की जो छाप छोड़ी दुनिया के इतिहास में इसकी कोई और मिसाल नहीं मिलती।

जब मस्जिदे-क़ुबा और मस्जिदे-नबवी की बुनियाद रखी गई और मस्जिदें बनाई जाने लगी तो रसूल (सल्ल॰) अपने सहाबियों के साथ मिलकर गारा ढोते थे। आप (सल्ल॰) के प्यारे साथी बार-बार कहते, "ऐ अल्लाह के रसूल! आप रहने दीजिए, यह काम हम कर लेंगे", लेकिन नबी (सल्ल॰) फ़रमाते थे, "नहीं, मैं भी तुम्हारे साथ इस काम में बराबर का भागीदार हूँ।"

इसी तरह ख़न्दक़ की लड़ाई में नबी (सल्ल॰) अपने सहाबियों के साथ मिलकर ख़न्दक़ की खुदाई करते थे। आप (सल्ल॰) का पाक जिस्म धूल मिट्टी से अट जाता और आप (सल्ल॰) बहुत थक जाते थे लेकिन इस हाल में भी काम में जुटे रहते थे। आप (सल्ल॰) के प्यारे साथी बार-बार आप (सल्ल॰) से काम छोड़ देने का आग्रह करते लेकिन नबी (सल्ल॰) फ़रमाते कि नहीं, मैं यह काम नहीं छोड़ूँगा और तुम्हारे साथ-साथ रहूँगा।

● बद्र की लड़ाई में मुसलमानों के पास सवारी के जानवर बहुत कम थे। हर तीन आदमियों के हिस्से में एक ऊँट आया था। उसपर वे बारी-बारी चढ़ते-उतरते थे। रसूल (सल्ल॰) भी अपनी बारी से ऊँट पर चढ़ते थे और फिर उतरकर पैदल चलनेवालों के साथ चलने लगते।

नबी (सल्ल॰) के प्यारे साथी कहते, "ऐ अल्लाह के रसूल! आप ऊँट

पर बैठे रहें, पैदल चलने की तकलीफ़ न करें।" आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "मैं तुमसे कम पैदल नहीं चल सकता और न तुमसे कम सवाब की मुझे ज़रूरत है।

● बद्र की लड़ाई में मुसलमानों ने जिन लोगों को क़ैदी बनाया उसमें नबी (सल्ल॰) के चचा हज़रत अब्बास (रज़ि॰) भी थे। उस वक़्त तक उन्होंने अपने इस्लाम का एलान नहीं किया था। क़ैदियों को रिहा कराने के लिए कुछ धन (फ़िदया) देना ज़रूरी था। कुछ सहाबियों ने रसूल (सल्ल॰) से दरख़ास्त की, "ऐ अल्लाह के रसूल! आप इजाज़त दें तो हम आपके चचा अब्बास को बिना धन (फ़िदया) लिए रिहा कर दें।" आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "नहीं, एक दिरहम भी माफ़ न करो।"

(यानी मेरे चचा होने के नाते उनका ख़याल न करो।)

● एक बार सफ़र के बीच नबी (सल्ल॰) का एक जूता टूट गया। आप (सल्ल॰) उसे गाँठने लगे तो एक सहाबी (रज़ि॰) ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! लाइए इसे मैं गाँठ दूँ।"

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "मुझे दूसरों पर अपनी बड़ाई जताना पसन्द नहीं।" और आप (सल्ल॰) ने अपना जूता अपने-आप ही गाँठ लिया।

● एक बार अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) अपने सहाबियों के साथ किसी जंग के लिए जा रहे थे। रास्ते में एक जगह रुककर बकरी ज़ब्ह करने और पकाने का फ़ैसला हुआ। सहाबियों ने आपस में काम बाँट लिए। एक सहाबी (रज़ि॰) ने कहा, "मैं बकरी ज़ब्ह करूँगा।" दूसरे ने कहा, "मैं इसकी बोटियाँ बनाऊँगा।" तीसरे ने कहा, "मैं इसे पकाऊँगा।" नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "मैं जंगल से लकड़ियाँ लाऊँगा।" सहाबियों ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! हमारे माँ-बाप आप पर क़ुरबान हों, आपको कुछ करने की ज़रूरत नहीं, हम सब काम कर लेंगे।"

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "मुझे यह पसन्द नहीं कि मैं तुमपर अपने आपको बड़ा समझूँ।"

रसूल (सल्ल०) बड़े सादा मिज़ाज थे

रसूल (सल्ल०) के मिज़ाज़ में बड़ी सादगी थी। अल्लाह ने आप (सल्ल०) के हाथ में सारे अरब की हुकूमत दी थी लेकिन आप (सल्ल०) में ज़रा भी घमण्ड और गुरूर नहीं था। आप (सल्ल०) घर का काम-काज ख़ुद कर लेते, अपने कपड़े में पैवन्द लगा लेते, अपना जूता गाँठ लेते, घर में झाड़ू लगा लेते और ख़ुद ही दूध दूह लेते थे। ज़मीन पर, चटाई पर, फ़र्श पर जहाँ जगह मिलती बैठ जाते। मजलिस में कभी पाँव फैलाकर नहीं बैठते थे। छोटा हो या बड़ा उसे सलाम करने में पहल करते थे। ग़रीबों और ग़ुलामों के साथ बैठकर खाना खा लेते। ग़रीब आदमी भी अगर बीमार पड़ता तो उसका हाल पूछ आते थे। ख़च्चर (टट्टू) और गधे पर भी ख़ुशी से सवारी कर लेते, कभी-कभी दूसरों को भी अपने साथ बिठा लेते। सहाबियों (रज़ि०) के साथ घुल-मिलकर बैठ जाते। उनसे अलग या ऊँची जगह बैठना पसन्द नहीं करते थे। मजलिस में कोई अनजान आदमी नबी (सल्ल०) को आसानी से नहीं पहचान सकता था। आप (सल्ल०) बाज़ार से ख़ुद सामान ख़रीद लाते और अपने जानवरों को ख़ुद ही चारा डालते थे।

● एक दिन नबी (सल्ल०) घर से निकले। लोग आप (सल्ल०) को देखकर अदब से खड़े हो गए। नबी (सल्ल०) ने उन्हें ऐसा करने से रोका और कहा कि मेरे आने पर खड़े न हुआ करो।

● हज़रत अनस (रज़ि०) कहते हैं कि रसूल (सल्ल०) हज के लिए गए तो मैंने देखा कि जो चादर नबी (सल्ल०) ने ओढ़ रखी थी उसकी क़ीमत चार दिरहम से ज़्यादा न थी।

● एक दिन दो सहाबी (रज़ि०) नबी (सल्ल०) के घर गए तो देखा कि आप (सल्ल०) ख़ुद अपने मकान की मरम्मत कर रहे हैं। वे आप (सल्ल०) का हाथ बटाने लगे। काम पूरा हो गया तो आप (सल्ल०) ने उन दोनों को बहुत दुआएँ दीं।

● एक दिन नबी (सल्ल०) ने एक दुकान से पाजामा ख़रीदा। उठने लगे

तो दुकानदार ने आप (सल्ल॰) का हाथ चूमना चाहा। नबी (सल्ल॰) ने हाथ पीछे हटा लिया और फ़रमाया, "यह तो अजम (अरब से बाहर) के लोगों का तरीक़ा है, मैं बादशाह नहीं हूँ, तुम्हीं में से एक हूँ।"

● एक बार एक आदमी नबी (सल्ल॰) के पास आया। वह आप (सल्ल॰) को देखकर काँपने लगा। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "डरो नहीं, मैं बादशाह नहीं हूँ, एक क़ुरैशी औरत का बेटा हूँ जो सूखा गोश्त पकाकर खाया करती थी।"

● जिस दिन रसूल (सल्ल॰) के बेटे इबराहीम का इन्तिक़ाल हुआ उस दिन सूरज ग्रहण लगा था। लोग कहने लगे कि आप (सल्ल॰) के दुख से सूरज भी दुखी है। नबी (सल्ल॰) ने सुना तो लोगों को मस्जिद में जमा किया और फ़रमाया, "लोगो, किसी की मौत से सूरज या चाँद में ग्रहण नहीं लगता। यह तो अल्लाह की क़ुदरत की निशानी है।"

● एक बार बातचीत करते हुए एक सहाबी ने यह कह दिया, "जो अल्लाह चाहे और आप (सल्ल॰) चाहें।"

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "तुमने मुझे ख़ुदा का साझी बना दिया—कहो, जो अल्लाह (अकेला) चाहे।"

● हज़रत उमर (रज़ि॰) फ़रमाते हैं कि हमने रसूल (सल्ल॰) से सुना, आप (सल्ल॰) फ़रमाते थे कि "लोगो, मेरी तारीफ़ में हद से आगे न बढ़ना जैसा ईसाई हज़रत ईसा (अलैहि॰) की तारीफ़ में हद से आगे बढ़ गए (उनको ख़ुदा का बेटा बना लिया)। मैं तो ख़ुदा का एक बन्दा हूँ, इसलिए तुम मुझे ख़ुदा का बन्दा और उसका रसूल कहो।"

रसूल (सल्ल॰) बुराई का बदला भलाई से देते थे

रसूल (सल्ल॰) बुराई या जुल्म करनेवाले से कभी बदला नहीं लेते थे, बल्कि उसके साथ भलाई करते—

● एक बार एक बद्दू (देहाती) आया। उसने आते ही रसूल (सल्ल॰) की चादर इतनी तेज़ी से खींची कि आप (सल्ल॰) को तकलीफ़ हुई। फिर उसने बड़ी गुस्ताख़ी से कहा, "मुहम्मद, ये मेरे दो ऊँट हैं, इनपर लादने के लिए मुझे माल दो! तेरे पास जो माल है वह न तेरा है न तेरे बाप का।"

नबी (सल्ल॰) ने बड़ी नर्मी से जवाब दिया, "माल तो अल्लाह का है और मैं उसका बन्दा हूँ।"

फिर आप (सल्ल॰) ने पूछा, "तुमने जो ऐसा बर्ताव मेरे साथ किया है, उसपर तुम डरते नहीं हो?"

बद्दू ने कहा, "नहीं।"

नबी (सल्ल॰) ने पूछा, "क्यों?"

वह बोला, "मुझे पूरा यक़ीन है कि तुम बुराई का बदला बुराई से नहीं देते।"

नबी (सल्ल॰) मुस्कराने लगे और उसके ऊँटों पर खजूरें और जौ लदवा दिए।

● रसूल (सल्ल॰) जब ताइफ़ गए तो वहाँ के लोगों ने आप (सल्ल॰) के साथ बहुत बुरा बर्ताव किया और पत्थर मार-मारकर आप (सल्ल॰) को ज़ख़्मी कर दिया। लेकिन कुछ सालों बाद जब वही लोग मदीना आए तो नबी (सल्ल॰) ने उनसे बहुत अच्छा बर्ताव किया। जब तक वे मदीना में रहे उनकी ख़ातिर की और एक बार भी उन्हें नहीं जताया कि तुमने मेरे साथ कैसा बर्ताव किया था।

● उहुद की लड़ाई में नबी (सल्ल.) घायल हो गए थे और आप (सल्ल.) के दो दाँत शहीद हो गए थे। आप (सल्ल.) से कहा गया कि दुश्मनों के लिए बद्दुआ करें। लेकिन आप (सल्ल.) ने फ़रमाया, "नहीं, मैं लानत (धिक्कार) करने के लिए नबी नहीं बनाया गया हूँ।"

फिर आप (सल्ल.) ने फ़रमाया, "ऐ ख़ुदा, मेरी क़ौम को सीधा रास्ता दिखा, वह मुझे नहीं जानती।"

● एक सहाबी ज़ैद-बिन-सअना (रज़ि.) इस्लाम लाने से पहले यहूदी थे। उसी ज़माने में नबी (सल्ल.) ने उनसे कुछ क़र्ज़ लिया और एक तय तारीख़ तक लौटाने का वादा किया। ज़ैद (रज़ि.) उस तारीख़ से पहले ही अपना क़र्ज़ वापस माँगने आ गए। उन्होंने आप (सल्ल.) की चादर पकड़कर खींची और बड़ी गुस्ताख़ी से कहा कि तुम टाल-मटोल करके मेरा धन मार लोगे। हज़रत उमर (रज़ि.) भी वहाँ थे, उनको गुस्सा आ गया और वे तलवार खींचकर यह कहते हुए ज़ैद की तरफ़ बढ़े, "ऐ अल्लाह के दुश्मन, तू अल्लाह के रसूल के बारे में ऐसी बुरी बातें कहता है?"

रसूल (सल्ल.) ने मुस्कराकर हज़रत उमर (रज़ि.) को रोका और फ़रमाया, "ऐ उमर, तुम्हें चाहिए था कि मुझसे क़र्ज़ चुकाने के लिए कहते और इससे कहते कि नर्मी करो।"

इसके बाद फ़रमाया कि ज़ैद का क़र्ज़ चुका दो और इसे बीस (20) साअ (एक वज़न) खजूरें और दे दो। ज़ैद (रज़ि.) नबी (सल्ल.) के अच्छे बर्ताव और नर्मी को देखकर मुसलमान हो गए।

रसूल (सल्ल॰) ग़लतियों को माफ़ कर देते थे

रसूल (सल्ल॰) अपने-पराए सबकी ग़लतियों को माफ़ कर देते थे। आप (सल्ल॰) अपने कट्टर दुश्मनों को भी माफ़ कर देते थे।

मक्का के इस्लाम-दुश्मन नबी (सल्ल॰) को बीस साल तक सताते रहे। जब आप (सल्ल॰) मक्का में थे तो उन्होंने आप (सल्ल॰) और मुसलमानों पर जुल्म के पहाड़ तोड़े थे। उन्होंने आप (सल्ल॰) को गालियाँ दीं, बुरे नामों से पुकारा, आप (सल्ल॰) का गला घोंटने की कोशिश की, रास्ते में काँटे बिछाए, क़त्ल करने की कोशिशें कीं यहाँ तक कि आप (सल्ल॰) को अपना देश छोड़कर मदीना जाना पड़ा। इस्लाम-दुश्मनों ने मदीना पर भी बार-बार चढ़ाई की और आप (सल्ल॰) को दुख देने में हमेशा आगे-आगे रहे। लेकिन जब आप (सल्ल॰) ने मक्का पर फ़तह (विजय) पाई तो आप (सल्ल॰) ने किसी से बदला नहीं लिया और सबको माफ़ कर दिया।

● हज़रत अबू-सुफ़ियान (रज़ि॰) नबी (सल्ल॰) के कट्टर दुश्मन थे आप (सल्ल॰) से कई बार लड़े, लेकिन जब वे मक्का की फ़तह के वक़्त आप (सल्ल॰) के सामने आए तो आप (सल्ल॰) ने न सिर्फ़ उनको माफ़ कर दिया बल्कि यह एलान भी करवा दिया कि जो उनके घर में पनाह लेगा उसको कुछ भी नहीं कहा जाएगा।

● उहुद की लड़ाई में नबी (सल्ल॰) के प्यारे चचा हज़रत हमज़ा (रज़ि॰) शहीद हुए तो अबू-सुफ़ियान की बीवी हिन्दा ने उनका पेट चीरकर कलेजा निकाल लिया और उसे चबा डाला और नाक-कान काटकर हार बनाया। फिर भी जब वे मक्का की फ़तह के बाद नबी (सल्ल॰) के सामने आईं तो आप (सल्ल॰) ने उन्हें माफ़ कर दिया।

● हिबार-बिन-असवद नबी (सल्ल॰) के कट्टर दुश्मन थे। आप (सल्ल॰) की प्यारी बेटी हज़रत ज़ैनब (रज़ि॰) मक्का से हिजरत करके मदीना आ

लगीं तो उन्होंने अपनी बरछी से उन्हें ऊँट से गिरा दिया। उनको ऐसी सख़्त चोट आई कि फिर वे ज़्यादा दिनों तक ज़िन्दा न रह सकीं। लेकिन जब हिबार ने रसूल (सल्ल॰) से माफ़ी माँगी तो आप (सल्ल॰) ने उन्हें माफ़ कर दिया।

● उमैर-बिन-वह्ब नबी (सल्ल॰) को शहीद करने के इरादे से मदीना आया लेकिन पकड़ लिया गया। जब आप (सल्ल॰) के सामने पेश किया गया तो आप (सल्ल॰) ने उसे भी माफ़ कर दिया।

● वहशी-बिन-हर्ब ने उहुद की लड़ाई में नबी (सल्ल॰) के प्यारे चचा हज़रत हमज़ा (रज़ि॰) को शहीद किया था। जब वे इस्लाम क़बूल करने आप (सल्ल॰) के पास आए तो आप (सल्ल॰) ने उन्हें माफ़ कर दिया और उन्हें बस इतना कहा कि तुम मेरे सामने न आया करो क्योंकि तुम्हें देखकर मुझे अपने चचा की याद आ जाती है।

रसूल (सल्ल॰) हमेशा अल्लाह पर भरोसा करते थे

रसूल (सल्ल॰) को अल्लाह पर पूरा भरोसा था। बड़ी-से-बड़ी मुसीबत हो, आप (सल्ल॰) अल्लाह पर भरोसा करते और डर-भय को दिल में न आने देते।

एक बार एक लड़ाई से वापस लौटते वक़्त नबी (सल्ल॰) एक पेड़ के नीचे सो गए। एक इस्लाम-दुश्मन बद्दू चमकती तलवार लिए आप (सल्ल॰) को शहीद करने के इरादे से आया और आप (सल्ल॰) को जगाकर बड़ी गुस्ताख़ी से कहने लगा—

"अब तुम्हें कौन बचाएगा?"

आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "अल्लाह।"

यह सुनकर वह काँपने लगा और तलवार उसके हाथ से गिर गई। आप (सल्ल॰) ने वह तलवार उठा ली और उससे पूछा—

"अब तुझे कौन बचाएगा?"

डर के मारे वह कुछ भी नहीं बोल सका। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया,

"जाओ, मैं बदला नहीं लिया करता।"

● एक रात कुछ सहाबी नबी (सल्ल॰) के घर के बाहर पहरा दे रहे थे। आप (सल्ल॰) ने घर से बाहर सिर निकालकर उनसे फ़रमाया, "लोगो, वापस चले जाओ, मेरी हिफ़ाज़त अल्लाह करेगा।"

● मक्का से हिजरत करके नबी (सल्ल॰) कुछ मील दूर सौर नामी गुफ़ा में ठहरे। इस्लाम-दुश्मन आप (सल्ल॰) को ढूँढ़ते-ढूँढ़ते गुफ़ा के मुँह पर पहुँच गए। आप (सल्ल॰) के प्यारे साथी हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) को उनके पाँव दिखने लगे। उन्होंने घबराकर आप (सल्ल॰) से कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! अगर वे थोड़ा झुककर देखेंगे तो हम उन्हें नज़र आ जाएँगे।"

नबी (सल्ल॰) ने उनको तसल्ली दी और फ़रमाया, "घबराओं नहीं, हमारे साथ अल्लाह है।"

और फिर अल्लाह ने नबी (सल्ल॰) को बचा लिया। इस्लाम-दुश्मन आप (सल्ल॰) को न देख सके और वापस चले गए।

● एक बार सहाबियों (रज़ि॰) ने एक आदमी को क़ैद करके नबी (सल्ल॰) के सामने पेश किया और कहा कि यह आदमी आप (सल्ल॰) पर छुपकर वार करना चाहता था।

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "इसे छोड़ दो, यह मुझको क़त्ल करना भी चाहता तो नहीं कर सकता था, मेरी हिफ़ाज़त करनेवाला अल्लाह है।"

रसूल (सल्ल॰) बड़े बहादुर और निडर थे

रसूल (सल्ल॰) बड़े बहादुर और निडर थे। आप (सल्ल॰) अल्लाह के सिवा किसी से नहीं डरते थे। बड़ी-से-बड़ी कठिनाई और मुसीबत का सामना सीना तानकर करते थे।

● हज़रत अनस (रज़ि॰) कहते हैं कि रसूल (सल्ल॰) से बढ़कर कोई बहादुर न था। एक रात मदीना में कुछ शोर उठा। सहाबियों ने समझा कि किसी दुश्मन ने हमला कर दिया है। वे तुरन्त तैयार होकर आवाज़ की तरफ़ दौड़ पड़े। अभी थोड़ी ही दूर गए थे कि उन्हें रसूल (सल्ल॰) घोड़े पर सवार वापस आते हुए मिले। आप (सल्ल॰) उस शोर की तरफ़ अकेले ही गए थे। आप (सल्ल॰) ने सहाबियों से फ़रमाया, "डरो नहीं! डरो नहीं! मैं शहर के बाहर देख आया हूँ। ख़तरे की कोई बात नहीं है।"

● हज़रत अली (रज़ि॰) फ़रमाते हैं कि जब घमासान लड़ाई हो रही होती तो उस वक़्त हम रसूल (सल्ल॰) की ओट लिया करते थे। आप (सल्ल॰) हम सबसे आगे दुश्मन के क़रीब होते थे।

● एक बार इस्लाम-दुश्मनों ने काबा में बैठकर यह मशवरा किया कि मुहम्मद (सल्ल॰) अब जैसे ही यहाँ आएँ, सब मिलकर उन्हें क़त्ल कर डालें। आप (सल्ल॰) की प्यारी बेटी हज़रत फ़ातिमा (रज़ि॰) ने इस्लाम-दुश्मनों की बातचीत सुन ली। वे रोती हुई आप (सल्ल॰) के पास आईं और आप (सल्ल॰) को दुश्मनों के इरादे की ख़बर दी। नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "मेरी बच्ची, घबराओ नहीं, अल्लाह मेरे साथ है।" फिर आप (सल्ल॰) ने वुज़ू किया और सीधे काबा की तरफ़ तशरीफ़ ले गए। जब आप (सल्ल॰) काबा के अन्दर दाख़िल हुए तो इस्लाम-दुश्मनों पर आप (सल्ल॰) की बहादुरी और निडरता का ऐसा रौब पड़ा कि उनकी नज़रें आप-ही-आप नीची हो गईं और किसी को आप (सल्ल॰) पर हमला करने की हिम्मत नहीं हुई।

● बद्र की लड़ाई में तीन सौ तेरह (313) मुसलमानों के मुक़ाबले में एक हज़ार इस्लाम-दुश्मन थे। जब लड़ाई शुरू हुई तो रसूल (सल्ल॰) दुश्मन के

क़रीब ही मौजूद थे। वहाँ ख़तरे के बिलकुल क़रीब खड़ा रहना भी बड़ी बहादुरी और हिम्मत का काम था।

● नबी (सल्ल०) ने जब मक्का से मदीना हिजरत की तो अबू-जहल ने एलान किया कि जो आदमी मुहम्मद (सल्ल०) को ज़िन्दा पकड़कर या उनका सिर काटकर लाएगा उसको सौ (100) ऊँट इनाम में दूँगा। अरब के एक बहादुर सुराक़ा ने आप (सल्ल०) का पीछा किया और आप (सल्ल०) के बिलकुल क़रीब पहुँच गया। हज़रत अबू-बक्र (रज़ि०) आप (सल्ल०) के साथ थे और उन्हें आप (सल्ल०) की हिफ़ाज़त की बहुत फ़िक्र थी। वे बार-बार मुड़कर पीछे देखते थे लेकिन नबी (सल्ल०) ने एक बार भी पीछे मुड़कर नहीं देखा कि दुश्मन किस इरादे से आ रहा है।

● उहुद की लड़ाई में नबी (सल्ल०) पर तीरों, तलवारों, बरछियों और पत्थरों की बारिश हो रही थी। आप (सल्ल०) घायल भी हो गए थे, फिर भी आप (सल्ल०) आख़िर वक़्त तक मैदान में डटे रहे। क़ुरैश का एक नामी बहादुर उबैय-बिन-ख़लफ़ अपने घोड़े पर सवार तेज़ी से नबी (सल्ल०) की तरफ़ बढ़ा। मुसलमानों ने उसका रास्ता रोकना चाहा लेकिन आप (सल्ल०) ने मनाकर दिया। फिर एक मुसलमान के हाथ से बरछी लेकर उबैय के सामने आए और बरछी की नोक उसके गले में चुभा दी। वह चिल्लाता हुआ वापस भागा। उसके साथियों ने कहा, "मामूली ज़ख़्म है, इसमें इतना घबराने की क्या बात है?"

उसने कहा, "यह सच है, लेकिन यह मुहम्मद के हाथ का लगाया हुआ ज़ख़्म है।" फिर उसी ज़ख़्म ने उसकी जान ले ली।

● हुनैन की लड़ाई में घात में बैठे दुश्मनों ने मुसलमानों पर इतने तीर बरसाए कि बहुत-से मुसलमानों के क़दम उखड़ गए, लेकिन रसूल (सल्ल०) पहाड़ की तरह जमे रहे। आप (सल्ल०) की सवारी की लगाम हज़रत अब्बास (रज़ि०) ने पकड़ रखी थी और आप (सल्ल०) ऊँची आवाज़ में कह रहे थे, "मैं अल्लाह का नबी हूँ, इसमें बिलकुल झूठ नहीं और मैं अब्दुल-मुत्तलिब का बेटा हूँ।"

फिर नबी (सल्ल॰) ने हज़रत अब्बास (रज़ि॰) को हुक्म दिया कि मुहाजिरों और अनसारियों को आवाज़ दें।

उन्होंने ज़ोर से पुकारा, "ऐ अनसारियो, ऐ पेड़ के नीचे बैअत (प्रतिज्ञा) करनेवालो।"

इस आवाज़ का कानों में पड़ना था कि सारे मुसलमान पलट पड़े और दुश्मनों को मार भगाया।

रसूल (सल्ल॰) सब्र और शुक्र करनेवाले थे

दुनिया में हर इनसान पर मुसीबतें और परेशानियाँ आती हैं। इसी तरह हर इनसान को ख़ुशियाँ और नेमतें भी नसीब होती हैं। लेकिन बहुत ही कम इनसान ऐसे होते हैं जो मुसीबतों पर सब्र करते हैं और ख़ुशी के मौक़ों पर अल्लाह का शुक्र अदा करते हैं।

रसूल (सल्ल॰) पर कोई बड़ी-से-बड़ी मुसीबत भी आती तो आप (सल्ल॰) उसे बड़े सब्र से सहन करते और जब कोई ख़ुशी हासिल होती तो तुरन्त अल्लाह का शुक्र अदा करते थे।

मक्का में तेरह (13) साल तक नबी (सल्ल॰) और आप के प्यारे साथियों को बड़ी तकलीफ़ें दी गईं और तरह-तरह से सताया गया। मदीना में भी आप (सल्ल॰) को बार-बार लड़ाइयों की मुसीबत में डाला गया लेकिन आप (सल्ल॰) ने बड़े सब्र से सारी मुसीबतों और तकलीफ़ों को झेला और कभी उफ़ तक न कहा।

नबी (सल्ल॰) की प्यारी माँ, आप (सल्ल॰) के मेहरबान दादा, आप (सल्ल॰) के हमदर्द चचा, आप (सल्ल॰) की जाँनिसार बीवी हज़रत ख़दीजा (रज़ि॰), आप (सल्ल॰) के तीन बेटों और तीन बेटियों और कई दूसरे रिश्तेदारों का इन्तिक़ाल आप (सल्ल॰) के सामने हुआ मगर आप (सल्ल॰) ने कभी हाय-हाय या फ़रियाद या रोना-चिल्लाना नहीं किया, बल्कि हमेशा सब्र का नमूना बनकर दिखाया।

दुख हो या सुख नबी (सल्ल॰) हमेशा अल्लाह का शुक्र अदा करते रहते थे। लड़ाई में जीत होती या कोई और ख़ुशी मिलती तो आप (सल्ल॰) तुरन्त सजदे में गिर जाते और अल्लाह का शुक्र अदा करते। कई बार सारी-सारी रात खड़े होकर इबादत करते थे, यहाँ तक कि पाँव सूज जाते थे।

एक बार सहाबा (रज़ि॰) ने आप (सल्ल॰) से कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! आपको तो अल्लाह ने बख़्श दिया है आपको इतनी इबादत करने की क्या ज़रूरत है?"

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "क्या मैं अल्लाह का सबसे ज़्यादा शुक्र अदा करनेवाला बन्दा न बनूँ?"

रसूल (सल्ल॰) हर एक से इनसाफ़ करते थे

रसूल (सल्ल॰) अपने-पराए, दोस्त-दुश्मन, मुस्लिम-ग़ैर-मुस्लिम, अमीर-ग़रीब हर एक के साथ पूरा-पूरा इनसाफ़ करते थे।

नबी (सल्ल॰) की नज़र में यह बहुत बड़ी बुराई है कि किसी आदमी के ज़ुल्म व ज़्यादती का साथ इसलिए दिया जाए कि वह अपने क़बीले या क़ौम का आदमी है। ऐसी घटनाएँ भी हैं कि नबी (सल्ल॰) के पास कोई मुक़द्दमा आया जिसमें एक तरफ़ मुसलमान था और दूसरा ग़ैर-मुस्लिम। आप (सल्ल॰) ने गवाहियाँ सुनने के बाद ग़ैर-मुस्लिम के हक़ में फ़ैसला दे दिया। इसी तरह जब तक किसी के ख़िलाफ़ पूरा सबूत न मिल जाता, आप (सल्ल॰) किसी को सज़ा नहीं देते थे।

● एक बार नबी (सल्ल॰) के एक सहाबी हज़रत अब्दुल्लाह-बिन-सह्ल (रज़ि॰) खजूरों की बटाई के लिए ख़ैबर गए। उनके चचेरे भाई हज़रत मुहैसा (रज़ि॰) भी साथ थे। अब्दुल्लाह (रज़ि॰) एक गली से जा रहे थे कि किसी ने उन्हें शहीद कर डाला। यह काम यहूदियों का ही हो सकता था। हज़रत मुहैसा (रज़ि॰) ने मदीना आकर आप (सल्ल॰) के पास मुक़द्दमा पेश किया। आप (सल्ल॰) ने उनसे फ़रमाया, "क्या तुम क़सम खा सकते हो कि अब्दुल्लाह को यहूदियों ने ही शहीद किया?"

उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मैंने अपनी आँखों से नहीं देखा।"

आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "तो फिर यहूदियों से क़सम ली जाए।" उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! उन लोगों का क्या भरोसा, वे तो सौ (100) झूठी क़समें खा जाएँगे।"

ख़ैबर में सिर्फ़ यहूदी बसे हुए थे। इसलिए वही हज़रत अब्दुल्लाह (रज़ि॰) के क़ातिल हो सकते थे लेकिन कोई गवाह मौजूद नहीं था। इसलिए नबी (सल्ल॰) ने यहूदियों पर कोई इलज़ाम नहीं लगाया और बैतुल-माल से

ख़ून-बहा के सौ (100) ऊँट दिला दिए।

● एक बार नबी (सल्ल॰) माले-ग़नीमत बाँट रहे थे कि एक आदमी आप (सल्ल॰) से चिपक गया। आप (सल्ल॰) के हाथ में एक पतली छड़ी थी। आप (सल्ल॰) ने उस छड़ी से उस आदमी को ठोका दिया। इससे उसके मुँह पर खरोंच आ गई। आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "आओ, मुझसे बदला ले लो।"

उसने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! मैंने माफ़ कर दिया!"

● मक्का की विजय के मौक़े पर बनू-मख़ज़ूम की एक औरत फ़ातिमा-बिन्ते-असवद चोरी करने के जुर्म में पकड़ी गई। बनू-मख़ज़ूम के लोग हज़रत उसामा-बिन-ज़ैद (रज़ि॰) के पास गए कि वे नबी (सल्ल॰) के पास फ़ातिमा की सिफ़ारिश करें।

नबी (सल्ल॰) हज़रत उसामा (रज़ि॰) से बहुत मुहब्बत करते थे लेकिन उन्होंने जब सिफ़ारिश की तो आप (सल्ल॰) बहुत नाराज़ हुए और फ़रमाया—

"पहले लोग इसी वजह से तबाह हुए कि जब उनमें कोई इज़्ज़तदार या अमीर आदमी चोरी करता तो उसको छोड़ देते और कोई कमज़ोर, मामूली आदमी चोरी करता तो उसको सज़ा देते। अल्लाह की क़सम! अगर मेरी बेटी फ़ातिमा भी चोरी करती तो मैं उसका हाथ काट देता।"

रसूल (सल्ल॰) लोगों के सामने हाथ फैलाने से मना करते थे

रसूल (सल्ल॰) को यह बात बिलकुल पसन्द नहीं थी कि कोई आदमी बिना सख़्त मजबूरी के दूसरों के आगे हाथ फैलाए। आप (सल्ल॰) लोगों को तालीम देते थे कि वे दूसरों से न माँगें बल्कि मेहनत करके अपनी रोज़ी कमाएँ।

एक बार एक ग़रीब लेकिन सेहतमन्द सहाबी ने नबी (सल्ल॰) के सामने हाथ फैलाया। आप (सल्ल॰) ने उनसे पूछा, "क्या तुम्हारे पास कुछ है?"

उन्होंने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! बस एक बिछौना और एक पानी पीने का प्याला है।"

नबी (सल्ल॰) ने ये दोनों सामान उनसे लेकर एक दूसरे सहाबी को दो दिरहम में बेच दिया। फिर आप (सल्ल॰) ने वे दो दिरम उन्हें दिया और फ़रमाया कि एक दिरहम से खाने-पीने का सामान जुटाओ और दूसरे से एक रस्सी ख़रीद लो और जंगल से लकड़ियाँ काटकर शहर में बेचा करो। उन्होंने ऐसा ही किया। पन्द्रह (15) दिनों के बाद वे नबी (सल्ल॰) के पास आए और बोले, "ऐ अल्लाह के रसूल! इस काम की बरकत से मेरे पास दस (10) दिरहम जमा हो गए हैं ।"

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "यह ज़्यादा अच्छा है या वह ज़्यादा अच्छा था कि क़ियामत के दिन भीख का दाग़ अपने चेहरे पर लेकर जाते।"

● एक सहाबी हज़रत क़बीसा (रज़ि॰) क़र्ज़दार हो गए। वे नबी (सल्ल॰) के पास आए और मदद की दरख़ास्त की। आप (सल्ल॰) ने उन्हें मदद करने का वादा किया, फिर फ़रमाया, "ऐ क़बीसा दूसरों के सामने हाथ फैलाना सिर्फ़ तीन आदमियों के लिए दुरुस्त है—एक वह जो क़र्ज़ के बोझ तले दब गया हो और जब उसकी ज़रूरत पूरी हो जाए तो फिर उसे सवाल नहीं करना चाहिए। दूसरा वह जिस पर अचानक कोई मुसीबत आ जाए और उसका

धन-सम्पत्ति बर्बाद हो जाए, फिर जब उसकी हालत दुरुस्त हो जाए तो उसे माँगना नहीं चाहिए। तीसरा वह जो भुखमरी की हालत में हो और मुहल्ले के तीन आदमी गवाही दें कि वह सचमुच भुखमरी की हालत में है। इसके सिवा जो कोई माँगकर हासिल करता है, वह हराम खाता है।"

● आख़िरी हज के मौक़े पर रसूल (सल्ल०) सदक़ा का माल बाँट रहे थे। माल लेनेवालों में दो ऐसे आदमी भी शामिल थे जो सेहतमन्द और ताक़तवर नज़र आ रहे थे। नबी (सल्ल०) ने फ़रमाया, "अगर तुम चाहते हो तो मैं इस माल में से कुछ दे सकता हूँ लेकिन सेहतमन्द और ताक़तवर लोग जो काम करने के क़ाबिल हों, उनका इस माल पर कोई हक़ नहीं है।"

रसूल (सल्ल॰) को सफ़ाई बहुत पसन्द थी

रसूल (सल्ल॰) को सफ़ाई और पाकी का बहुत ख़याल रहता था। आप (सल्ल॰) हमेशा पाक-साफ़ रहते और दूसरों को भी पाक-साफ़ रहने की नसीहत करते थे। आप (सल्ल॰) का लिबास सादा और साफ़-सुथरा होता था। आप (सल्ल॰) को दाँतों की सफ़ाई का इतना ख़याल था कि हर नमाज़ से पहले मिस्वाक करते थे। खाना खाने से पहले भी हाथ धोते और खाना खाने के बाद भी।

● एक बार नबी (सल्ल॰) ने एक आदमी को गन्दे कपड़े पहने देखा तो फ़रमाया, "इससे इतना भी नहीं होता कि अपने कपड़े धो लिया करे।"

● एक बार एक सहाबी नबी (सल्ल॰) से मिलने इस हालत में आए कि उनकी दाढ़ी और सिर के बाल बिखरे हुए थे। आप (सल्ल॰) ने उनसे फ़रमाया कि अपने बाल सँवारकर आओ। जब वे बाल सँवारकर आए तो नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "क्या तुम्हारी यह हालत तुम्हारी पहली हालत से अच्छी नहीं?"

● एक बार एक आदमी फटे और गन्दे कपड़े पहने हुए नबी (सल्ल॰) के पास आया। आप (सल्ल॰) ने उससे पूछा, "तुम्हारे पास कुछ धन-दौलत है?"

उसने कहा, "अल्लाह का दिया बहुत कुछ है।"

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "तो फिर तू अल्लाह का शुक्र क्यों नहीं अदा करता?"

नबी (सल्ल॰) का मतलब था कि अपनी हैसियत के मुताबिक़ साफ़-सुथरे कपड़े क्यों नहीं पहनता?

● रसूल (सल्ल॰) मस्जिद की सफ़ाई का बहुत ख़याल रखते थे। अगर कभी मस्जिद की दीवारों पर थूक के धब्बे देखते तो बहुत नाराज़ होते और उन धब्बों को छड़ी की नोक से खुरचकर मिटाते थे। मस्जिद में कोई खुश

जलाता तो आप (सल्ल॰) बहुत ख़ुश होते थे। नबी (सल्ल॰) सहाबियों (रज़ि॰) को यह नसीहत करते थे कि वे मस्जिद में लहसुन और प्याज़ खाकर न आया करें क्योंकि उनसे बदबू फैलती है। आप (सल्ल॰) जुमा (शुक्रवार) के दिन नहाकर और कपड़े बदलकर मस्जिद आने की ताकीद फ़रमाते। रास्तों को साफ़-सुथरा रखने का हुक्म देते। अगर रास्ते में कोई झाड़ी, पत्थर या कोई और रुकावट डालनेवाली चीज़ पड़ी होती तो आप (सल्ल॰) उसे ख़ुद वहाँ से हटा देते।

अगर कोई आदमी रास्ते में गन्दगी फैलाता, पेशाब-पाख़ाना करता तो नबी (सल्ल॰) बहुत नाराज़ होते और फ़रमाते कि रास्ते में गन्दगी फैलानेवाले से अल्लाह नाराज़ होता है।

नबी (सल्ल॰) छाया देनेवाले पेड़ों के नीचे भी गन्दगी फैलाने से मना फ़रमाते थे।

रसूल (सल्ल॰) बच्चों से बहुत मुहब्बत करते थे

रसूल (सल्ल॰) बच्चों से बहुत मुहब्बत करते थे। आप (सल्ल॰) कहीं जा रहे होते और रास्ते में बच्चे मिल जाते तो आप (सल्ल॰) मुस्कराते हुए बड़ी मुहब्बत से उन्हें सलाम करते। फिर उनसे प्यार भरी बातें करते। एक-एक को गोद में उठाते, उनका मुँह और सिर चूमते और खाने की कोई चीज़ देते। कभी खजूरें, कभी कोई फल और कभी कोई और चीज़।

अगर कोई आदमी नबी (सल्ल॰) को मौसम का नया फल देता तो आप (सल्ल॰) सबसे पहले उसे नन्हें बच्चों में बाँटते थे।

नबी (सल्ल॰) सफ़र से लौटकर आते तो रास्ते में जो बच्चे मिलते उन्हें बड़ी मुहब्बत से अपने साथ सवारी पर बिठा लेते, किसी को अपने आगे और किसी को पीछे। बच्चे भी नबी (सल्ल॰) से बड़ी मुहब्बत करते थे। आप (सल्ल॰) को देखते ही लपककर आप (सल्ल॰) के पास पहुँच जाते।

रसूल (सल्ल॰) नमाज़ पढ़ाते तो परदे के पीछे जमाअत में औरतें भी होतीं। अगर उन औरतों में किसी का बच्चा रोने लगता तो आप (सल्ल॰) छोटी-छोटी सूरतें पढ़कर नमाज़ जल्दी ख़त्म कर देते ताकि बच्चे को तकलीफ़ न हो और उसकी माँ भी बेचैन न हो।

● रसूल (सल्ल॰) जब हिजरत कर के मदीना आए तो अनसार की छोटी-छोटी बच्चियाँ दरवाज़े पर खड़ी होकर यह गीत गाने लगीं—

"हम नज्जार ख़ानदान की बेटियाँ हैं।

मुहम्मद कैसे अच्छे पड़ोसी (मेहमान) हैं!"

नबी (सल्ल॰) ने उन बच्चियों से फ़रमाया—

"क्यों बच्चियो, तुम मुझसे प्यार करती हो?"

सबने कहा, "हाँ, ऐ अल्लाह के रसूल!"

आप (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "मैं भी तुमसे प्यार करता हूँ।"

● रसूल (सल्ल॰) के एक ग़ुलाम थे, हज़रत ज़ैद (रज़ि॰)। आप (सल्ल॰) ने बचपन से ही उनको पाला था, फिर आज़ाद करके अपना मुँह बोला बेटा बना लिया था। हज़रत ज़ैद (रज़ि॰) के बेटे हज़रत उसामा (रज़ि॰) थे। नबी (सल्ल॰) उनसे बहुत प्यार करते थे। आप (सल्ल॰) फ़रमाया करते थे कि अगर उसामा लड़की होता तो मैं उसे बहुत-से गहने पहनाता। कभी-कभी आप (सल्ल॰) अपनी गोद में हज़रत हसन (रज़ि॰) और हज़रत उसामा (रज़ि॰) को बिठाकर फ़रमाते, "ऐ अल्लाह, मैं इन दोनों से मुहब्बत रखता हूँ, तू भी इनसे मुहब्बत रख।"

● एक बार ईद के दिन नबी (सल्ल॰) चेहरे पर चादर डालकर लेटे हुए थे। कुछ बच्चियाँ घर में आईं और ख़ुशी के गीत गाने लगीं। तभी हज़रत अबू-बक्र (रज़ि॰) आ गए और उन बच्चियों को डाँटने लगे। नबी (सल्ल॰) ने चादर हटाई और फ़रमाया, "अबू-बक्र, इन्हें कुछ न कहो, गाने दो, आज इनकी ईद है।"

● एक बार अरब के एक गाँव के अमीर आदमी ने नबी (सल्ल॰) को बच्चों से प्यार करते देखा तो कहा, "आप बच्चों को इतना प्यार करते हैं! मेरे दस (10) बच्चे हैं, मैंने कभी किसी को प्यार नहीं किया।"

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "अगर अल्लाह तुम्हारे दिल से मुहब्बत छीन ले तो मैं क्या करूँ?"

● एक बार नबी (सल्ल॰) मस्जिद में ख़ुत्बा दे रहे थे कि हज़रत हसन (रज़ि॰) और हज़रत हुसैन (रज़ि॰) वहाँ आ गए। दोनों नन्हे बच्चे थे। आप (सल्ल॰) उन्हें देखकर मिम्बर से नीचे उतर आए और दोनों को गोद में उठाकर फ़रमाया, "अल्लाह ने सच फ़रमाया कि तुम्हारे माल और औलाद तुम्हारे लिए फ़ित्ना (इम्तिहान) हैं।"

● नबी (सल्ल॰) अपनी बेटी हज़रत फ़ातिमा (रज़ि॰) के घर जाते तो फ़रमाते, "मेरे बच्चों को लाओ।" वे उन्हें लातीं तो आप (सल्ल॰) उन्हें सीने से लगाते और उनका मुँह चूमते।

● एक बार आप (सल्ल॰) अपनी नन्ही नवासी हज़रत उमामा (रज़ि॰) को कन्धे पर बिठाए हुए मस्जिद में आए और उसी हालत में नमाज़ पढ़ाई। जब रुकूअ और सजदे में जाते तो उनको उतार देते फिर खड़े होते तो कन्धे पर चढ़ा लेते।

● रसूल (सल्ल॰) दुश्मनों के बच्चों से भी बहुत अच्छा बर्ताव करते थे और इस्लाम-दुश्मनों से लड़ाई होती तो आप (सल्ल॰) सहाबियों (रज़ि॰) को हुक्म देते कि "देखो किसी बच्चे को मत मारना। वे बेगुनाह हैं, उन्हें कोई तकलीफ़ न होने पाए।" एक बार फ़रमाया, "जो कोई बच्चों को दुख देता है ख़ुदा उससे नाराज़ हो जाता है।"

एक बार लड़ाई में इस्लाम-दुश्मनों के कुछ बच्चे चपेट में आकर मारे गए। आप (सल्ल॰) को ख़बर हुई तो आप (सल्ल॰) को बहुत दुख हुआ। किसी ने कहा, "ऐ अल्लाह के रसूल! वे तो इस्लाम-दुश्मनों के बच्चे थे।"

नबी (सल्ल॰) ने फ़रमाया, "इस्लाम-दुश्मनों के बच्चे भी तुमसे अच्छे हैं। ख़बरदार! बच्चों को क़त्ल न करना।" फिर फ़रमाया, "हर बच्चा अल्लाह की फ़ितरत (प्रकृति) पर पैदा किया जाता है।"

रसूल (सल्ल॰) की प्यारी बातें

रसूल (सल्ल॰) जो बातें कहते थे या जो काम करते थे उनके बयान को 'हदीस' कहते हैं। आप (सल्ल॰) की प्यारी बातों पर अमल करके हर आदमी अपनी ज़िन्दगी सँवार सकता है और ज़िन्दगी के हर मैदान में कामयाबी हासिल कर सकता है। रसूल (सल्ल॰) की चुनी हुई सौ हदीसें नीचे लिखी जा रही हैं। इनपर अमल करने से फ़ायदा-ही-फ़ायदा है।

1. हमेशा सच बोलो और झूठ से बचो।
2. किसी मुसलमान के लिए यह बात मुनासिब (उचित) नहीं कि वह दूसरे मुसलमान से तीन दिन से ज़्यादा रूठा रहे।
3. ताक़तवर वह नहीं जो किसी को गिरा ले, बल्कि ताक़तवर वह है जो गुस्से के वक़्त अपने आपको क़ाबू में रखे।
4. किसी से हसद न करो क्योंकि हसद नेकियों को इस तरह बर्बाद कर देता है जिस तरह आग लकड़ियों को जला देती है।
5. किसी की चुग़ली मत करो। सबसे बुरे वे लोग हैं जो चुग़लियाँ खाते हैं और दोस्तों के बीच जुदाई डालते हैं।
6. किसी को गाली या ताना न दो, और न कोई बुरी या गन्दी बात मुँह से निकालो।
7. मख़लूक़ (सृष्टि) ख़ुदा का परिवार है इसलिए ख़ुदा का सबसे प्यारा आदमी वह है जो उसकी मख़लूक़ के साथ अच्छा बर्ताव करे।
8. अल्लाह उस आदमी पर रहम नहीं करता जो लोगों पर रहम नहीं करता।
9. जो छोटों से प्यार नहीं करता और बड़ों की इज़्ज़त नहीं करता उसका मुसलमानों से कोई ताल्लुक़ नहीं।
10. मुसलमान मुसलमान का भाई है, न उसपर कोई ज़ुल्म करे, न उसे रुसवा करे और न उसे घटिया समझे।

11. कोई आदमी उस वक़्त तक सच्चा मुसलमान नहीं हो सकता जब तक कि वह अपने मुसलमान भाई के लिए उसी चीज़ को पसन्द न करे जिसे वह अपने लिए पसन्द करता है।
12. जब वादा करो तो उसे पूरा करो।
13. मेहमान की इज़्ज़त और ख़िदमत करो।
14. जो अपने आपको बड़ा कहे और अकड़कर चले अल्लाह उससे बहुत नाराज़ होता है।
15. पीठ पीछे किसी की बुराई न करो, यह बहुत बड़ा गुनाह है।
16. किसी की बात छिपकर और कान लगाकर न सुनो।
17. गरीबों और दुखियारों की मदद करो।
18. फ़ुज़ूलख़र्ची न करो लेकिन बख़ील और कंजूस भी न बनो।
19. हमेशा पाक-साफ़ रहो, अल्लाह तुमको बहुत रोज़ी देगा।
20. मुसलमान वह है जिसकी ज़बान और हाथ से मुसलमान महफ़ूज़ रहें।
21. बीमारों का हाल-चाल मालूम किया करो।
22. माँ-बाप का अदब (आदर) करो। उनकी हर तरह से सेवा करो। उनके सामने ऊँची आवाज़ में न बोलो। जब वे बूढ़े हो जाएँ तो उनके सामने उफ़ भी न करो।
23. लाज-शर्म ईमान की निशानी है।
24. एक दूसरे को सलाम किया करो। जब घर में दाख़िल हो तो घरवाल को सलाम करो और जब बाहर निकलो तब भी उनको सलाम करो वह आदमी अल्लाह को बहुत प्यारा है जो सलाम में पहल करे। छोट बड़े को, चलनेवाला बैठे हुए को और थोड़े आदमी ज़्यादा आदमियं को सलाम करें।
25. जो आदमी लोगों के साथ नर्मी, मुहब्बत और आराम से बातें करत है उसपर जहन्नम की आग हराम है।

26. मज़दूर की मज़दूरी उसका पसीना सूखने से पहले दे दो।
27. अपने नौकरों और ख़ादिमों के साथ अच्छा बर्ताव करो। जो खुद खाते हो उन्हें खिलाओ, जो खुद पहनते हो उन्हें पहनाओ।
28. जो दूसरों को माफ़ कर देता है अल्लाह उसकी इज़्ज़त बढ़ाता है।
29. इल्म (ज्ञान) हासिल करना हर मुसलमान का फ़र्ज़ (कर्तव्य) है।
30. सबसे पाक रोज़ी यह है कि तुम अपनी मेहनत से कमाकर खाओ।
31. जानवरों को मत सताओ। जो उनपर रहम नहीं करता, अल्लाह भी उसपर रहम नहीं करता।
32. जब तुम्हारे पास अमानत रखी जाए तो उसमें बेईमानी न करो और उसको असली हालत में वापस करो।
33. पड़ोसियों के साथ अच्छा बर्ताव करो। जिस आदमी के पड़ोसी उसकी बुराइयों से महफ़ूज़ न होंगे, वह जन्नत में नहीं जाएगा।
34. अपने रिश्तेदारों से अच्छा बर्ताव करो, उनसे नाता मत तोड़ो।
35. रास्ते से तकलीफ़ देनेवाली चीज़ें हटा दिया करो।
36. बदगुमानी से बचो क्योंकि बगदुमानी सबसे बड़ा झूठ है।
37. किसी पर ज़ुल्म न करो।
38. गुस्सा न करो।
39. लोगों से अच्छी-अच्छी बातें करो।
40. किसी पर एहसान करके उसे कभी न जताओ।
41. सभी कामों में बीच की चाल अच्छी है।
42. अमल का दारोमदार नीयतों पर है। (अगर कोई भलाई दिखाने के लिए की जाए तो उसका कोई सवाब (इनाम) नहीं है।)
43. तुममें सबसे अच्छा वह है जिसका अख़लाक़ (किरदार) अच्छा हो।
44. अपनी हर ज़रूरत अल्लाह से माँगो। यहाँ तक कि जूते का फ़ीता टूट जाए तो वह भी अल्लाह ही से माँगो।

45. अस्ल मालदारी दिल की मालदारी है।
46. हर भलाई सवाब (पुण्य) है।
47. रिश्वत लेनेवाला और रिश्वत देनेवाला दोनों जहन्नमी हैं।
48. हर नशा लानेवाली चीज़ हराम है।
49. बुरे कामों से बचो।
50. किसी के सामने हाथ न फैलाया करो।
51. मुसीबत में सब्र किया करो।
52. मुसलमानों में फूट डालने से बचो।
53. ज़ालिम को ज़ुल्म करने से रोको।
54. लालच न करो। ख़ुदा ने तुम्हें जो दिया है उसमें ख़ुश रहो।
55. किसी पर इलज़ाम न लगाओ।
56. किसी की नक़ल न उतारो।
57. अपनी ज़बान क़ाबू में रखो।
58. किसी का बुरा सोचो भी नहीं।
59. आपस में झगड़ा मत करो।
60. अच्छे अख़लाक़ और नर्मी को अपनाओ। ख़ुदा घमण्ड करनेवालों को पसन्द नहीं करता।
61. बड़ा सख़ी (दानी) वह है जिसने इल्म सीखा और फैलाया।
62. बेज़रूरत मेहमान न रहो।
63. मेज़बान के लिए तकलीफ़ की वजह न बनो कि वह तुम्हें बोझ समझने लगे।
64. यतीम (अनाथ) की इज़्ज़त करो। उसके साथ ज़्यादती न करो, उसको खाना खिलाओ और उसकी ज़रूरतें पूरी करो।
65. पड़ोसी की इज़्ज़त करो।

66. भूले-भटके और अन्धे को रास्ता बताना सदक़ा देने जैसी नेकी है।
67. जो किसी की ज़रूरत पूरी करेगा अल्लाह उसकी ज़रूरत पूरी करेगा।
68. जानवरों को आपस में मत लड़ाओ।
69. जानवरों के मामले में ख़ुदा से डरो। उनको अच्छा खिलाओ।
70. किसी के घर जाओ तो अन्दर जाने से पहले घरवालों की इजाज़त ले लो।
71. मजलिस (सभा) में जाओ तो सलाम करो, जहाँ जगह मिल जाए बैठ जाओ, किसी को उठाकर उसकी जगह न बैठो।
72. ज़्यादा हँसा न करो।
73. बातें कम किया करो।
74. अपने बालों को सँवारकर रखा करो, सिर पर तेल लगाया करो और बालों में कंघी किया करो।
75. छींकते वक़्त मुँह पर कपड़ा या हाथ रख लिया करो। जमाई लेते वक़्त भी ऐसा ही किया करो।
76. किसी बीमार का हाल पूछने जाओ तो ज़्यादा देर उसके पास न बैठो।
77. सुबह-सवेरे जागने की आदत डालो।
78. नुजूमियों की बातों पर यक़ीन न करो।
79. जादू-टोना करना बड़ा गुनाह है।
80. अपने सिर पर क़र्ज़ का बोझ न होने दो।
81. किसी का दरवाज़ा खटखटाते वक़्त अपना नाम बताओ।
82. सोने से पहले बिस्तर झाड़ लिया करो।
83. जूता पहनने से पहले जूते को झाड़ लिया करो।
84. हमेशा बिसमिल्लाह पढ़कर दाएँ हाथ से खाना खाओ।
85. खाना ठण्डा करके खाओ।

86. खाने से पहले और खाने के बाद हाथ धो लो।

87. हमेशा कुछ भूख रखकर खाओ। ठूँस-ठूँसकर खाना मुसलमान का तरीक़ा नहीं।

88. खाना खाते ही न सो जाया करो।

89. खाने में ऐब न निकालो। ख़ाहिश न हो तो छोड़ दो।

90. बीमार को खाने के लिए मजबूर न करो।

91. पानी खड़े होकर न पियो।

92. पानी के बरतन में साँस न लो, न उसमें फूँक मारो।

93. एक साँस में पानी न पियो, बल्कि तीन साँस में पियो।

94. खाना खाकर और पानी पीकर अल्लाह का शुक्र ज़रूर अदा करो।

95. सादा लेकिन साफ़-सुथरा लिबास पहना करो।

96. सफ़ेद लिबास पाकीज़ा और पसन्दीदा है।

97. मर्दों को औरतों जैसा और औरतों को मर्दों जैसा लिबास नहीं पहनना चाहिए।

98. मर्दों को गहरे या लाल रंग के कपड़े नहीं पहनने चाहिएँ।

99. ऐसे लिबास न पहनो जिससे तुम दूसरों से ऊँचे या बड़े दिखाई दो।

100. ऐसा लिबास न पहनो जो ज़मीन पर घिसटता हो।

कुछ अहम पुस्तकें

पैग़म्बर की बातें	—अब्दुर्रब करीमी
प्यारे नबी ऐसे थे	—माइल ख़ैराबादी
प्यारे नबी की चहेती बेटियाँ	—मौलाना फ़ज़्ले-क़दीर नदवी
प्यारे नबी (सल्ल॰) की पाक बीवियाँ	—तालिब हाशिमी
प्यारे नबी के चार यार-1	—इरफ़ान ख़लीली
प्यारे नबी के चार यार-2	—इरफ़ान ख़लीली
प्यारे नबी के चार यार-3	—इरफ़ान ख़लीली
प्यारे नबी के चार यार-4	—इरफ़ान ख़लीली
प्यारे नबी कैसे थे?	—इरफ़ान ख़लीली
प्यारे रसूल (सल्ल॰) के प्यारे साथी	—माइल ख़ैराबादी
सहाबियात (रज़ि॰) के हालात-1	—तालिब हाशिमी
सहाबियात (रज़ि॰) के हालात-2	—तालिब हाशिमी
सहाबियात (रज़ि॰) के हालात-3	—तालिब हाशिमी
जन्नती बच्चा	—माइल ख़ैराबादी
नीयत का फल	—माइल ख़ैराबादी
सबक़ आमोज़ क़ुरआनी क़िस्से	—माइल ख़ैराबादी
सब्र और उसके फ़ायदे	—बिन्तुल-इस्लाम
हम ऐसी बनें!	—माइल ख़ैराबादी
हदीस क़ुदसी	—मुहम्मद फ़ारूक़ ख़ाँ